वीतराग-विज्ञान

वीतराग-विज्ञान ही, तीन लोक में सार।
वीतराग-विज्ञान का, घर-घर होय प्रसार।।

वर्ष : 30 (वीर नि. संवत् - 2538) 344 अंक : 8

मैं देखा आतमरामा...

मैं देखा आतमरामा।।टेक।।

रूप फरस रस गंध तैं न्यारा, दरस-ज्ञान-गुन धामा।
नित्य निरंजन जाकै नाहीं, क्रोध लोभ मद कामा।।
मैं देखा आतमरामा...।।1।।

भूख-प्यास सुख-दुःख नहिं जाकै,नाहिं वन पुर गामा।
नहीं साहिब नहीं चाकर भाई,नहीं तात नहीं मामा।।
मैं देखा आतमरामा...।।2।।

भूलि अनादि थकी जग भटकत,लै पुद्गल का जामा।
'बुधजन' संगति जिन गुरु की तैं, मैं पाया मुझ ठामा।।
मैं देखा आतमरामा...।।3।।

कविवर पण्डित बुधजनजी

आर्ट ऑफ हैप्पी लिविंग सेमिनार संपन्न

हैदराबाद (आन्ध्रप्रदेश) : यहाँ हिमायत नगर में दिनाँक 8 जनवरी 2012 को JIWO (Jain International Women's organization), JITO (Jain International trade organization) एवं अन्य संगठनों के तत्त्वावधान में छठवें आर्ट ऑफ हैप्पी लिविंग सेमिनार का आयोजन किया गया।

इस वर्कशॉप में विभिन्न धार्मिक गेम/एक्टिविटी के माध्यम से आध्यात्मिक सिद्धान्तों का भावभासन करने पर जोर दिया गया, इससे जिनागम की सिद्धान्तपरक बातों को जीवन में उतारने का औचित्य ख्याल में आया।

आज का युवा वर्ग धर्म को मात्र खाने-पीने के संयम और पूजा-पाठ तक ही सीमित समझता है, अन्य लोग भी अध्यात्मिक सिद्धांतों को बुद्धि से समझ तो लेते हैं; पर जीवन का अंग नहीं बनाते। जीवन की हर समस्या का समाधान उनसे नहीं ढूँढते हैं। आध्यात्मिक सिद्धांतों को पढना अलग बात है और उनको जीना अलग बात है। आर्ट ऑफ हैप्पी लिविंग वर्कशॉप का उद्देश्य यही भावभासन कराना है कि अध्यात्म मात्र आगामी सुख के लिए ही नहीं; बल्कि वर्तमान में हमारे जीवन को शांत और सुखमय बनाने में अत्यंत सक्षम है।

वर्कशॉप को 12 लोगों की टीम में बांटा गया। इसके प्रारंभ में सभी को अपनी समस्याओं को एक कागज पर लिखने का निर्देश दिया गया। अन्त में आध्यात्मिक सिद्धांतों के माध्यम से सभी समस्याओं का समाधान किया गया।

इस वर्कशॉप में सरल भाषा व रोचक शैली में क्रमबद्धपर्याय, वस्तुस्वातंत्र्य, अकर्तावाद, उपयोग का प्रयोग, पर्याय की क्षणभंगुरता आदि आध्यात्मिक सिद्धांतों को प्रतिदिन अपने जीवन में अपनाने का तरीका बताया गया।

इस अवसर पर श्री शुद्धात्मप्रकाशजी भारिल्ल जयपुर, विदुषी शुद्धात्मप्रभा टडैया मुम्बई एवं विदुषी स्वानुभूति जैन मुम्बई ने आध्यात्मिक सिद्धांतों को सरल भाषा में प्रस्तुत किया।

यह सेमिनार रात्रि 9 बजे संपूर्ण हुआ। अन्त में श्री डी.सी. गेलडा (कोऑर्डिनेटर-स्पेशल प्रोजेक्ट्स ग्रुप ऑफ जीतो (JITO) हैदराबाद) द्वारा धन्यवाद ज्ञापित किया गया। उन्होंने संस्कार एक्टिविटी टीम के सदस्यों श्रीमती स्नेहलता गेलडा, श्रीमती पुष्पा कीमती, श्रीमती सरला भुटोरिया, श्रीमती ममता सांखला, श्रीमती रेणुका चौरडिया, श्रीमती मधु सुराना, श्रीमती निशा शाह, श्रीमती आशा पहाडा, श्रीमती छाया मुनोत और श्रीमती कुसुम मुनोत का भी धन्यवाद ज्ञापित किया। उन्होंने JIWO के मैनेजिंग कमेटी के सदस्यों श्रीमती कस्तूरी मूथा (अध्यक्ष), राजकुमारी चौरडिया (चैयरमेन), मंजु दुग्गड (चीफ सेक्रेटरी) और वीणा ओसवाल (कोषाध्यक्ष) को भी बधाई दी।

अनेक लोगों ने प्रथम बार जैन सिद्धांतों को जीवन में सुख-शान्ति लाने के दृष्टिकोण से देखा था; अत: उन्होंने अपने-अपने नगरों में भी इस वर्कशॉप को करने की भावना व्यक्त की।

इस वर्कशॉप को अपने शहर में आयोजित करवाने अथवा इसके विषय में विस्तृत जानकारी हेतु संपर्क करें – डॉ.शुद्धात्मप्रभा टडैया, 09321295265/09821923722

सम्पादकीय

(गतांक से आगे...)

स्वामीजी इस गाथा के भाव को इसप्रकार स्पष्ट करते हैं –

''यह सम्यग्ज्ञान सहित जीव की क्षमा की बात है। अन्दर में भान है कि मेरा स्वभाव तो शांत है, इसमें जो क्रोध की वृत्ति है, वह दु:खदायक है; वह मेरा स्वरूप नहीं है। – ऐसे भानसहित जीव की क्षमा की यह बात है।[१]

बाहर में कोई निंदा करे, तो विचारे कि निंदावाचक शब्द तो जड़ हैं, उनसे मेरे आत्मा का नुकसान नहीं होता। मेरा अपराध हुए बिना ही मिथ्यादृष्टि जीव बिना कारण ही मुझे त्रास देने, दुखी करने का उद्यम करता है, सो वह तो मेरे पुण्य से दूर होगा – ऐसा विचार कर क्रोध भाव को उत्पन्न ही न होने देना **जघन्यक्षमा** है।[२]

'मैं इसे मार के फैंक दूँगा' पापी जीव के ऐसा परिणाम होते हुए भी मेरे पुण्योदय होने से वह मुझे मार नहीं सका – ऐसा विचार कर क्षमा धारण करना **मध्यमक्षमा** है।[३]

जड़ शरीर को सिंह, बाघ खाता हो, कोई तलवार से छेदता हो, चीरता हो, घानी में पेलता हो; तो धर्मात्मा ज्ञानी जीव ऐसा विचार करते हैं कि मैं तो अमूर्त चैतन्यब्रह्म हूँ, मेरा वध या घात होता ही नहीं है। मेरा विनाश तो इन्द्र के वज्र से भी नहीं होता – ऐसा जानकर अपने अन्तर उपशम रस में स्थिर रहना **उत्तमक्षमा** है।[४]

ज्ञानानन्दस्वभाव के आश्रय से क्रोध, मान, माया और लोभ को जीतना प्रायश्चित्त है।[५]''

उक्त गाथा की टीका में टीकाकार मुनिराज क्षमा को तीन रूपों में प्रस्तुत करते हैं – जघन्य, मध्यम और उत्तम। यद्यपि उक्त तीनों प्रकार की क्षमा सम्यग्दृष्टि ज्ञानियों में ही पाई जाती है; तथापि उनमें जो अन्तर स्पष्ट किया गया है; उस पर जब ध्यान देते हैं तो यह बात स्पष्ट होती है कि यह अन्तर मात्र इस बात का है कि किन परिस्थितियों में किस प्रकार के चिन्तन से उक्त क्षमाभाव प्रगट हुआ है।

जब कोई अज्ञानी किसी ज्ञानी को अकारण त्रास देने लगता है तो ज्ञानी सोचता है कि यह त्रास तो मेरे पुण्योदय से दूर हुआ है या होगा। इसप्रकार के चिन्तन के आधार पर जो क्षमा भाव प्रगट होता है; वह **जघन्य उत्तमक्षमा** है।

इसीप्रकार जब वह त्रास अकारण ही ताड़न-मारन की सीमा तक पहुँच जाता

१. नियमसार प्रवचन, पृष्ठ ९७१ २. वही, पृष्ठ ९७१ ३. वही, पृष्ठ ९७२
४. वही, पृष्ठ ९७२ ५. वही, पृष्ठ ९७४

है, तब भी जब ज्ञानी उसीप्रकार के चिन्तन से शान्त रहता है, क्षमाभाव धारण किये रहता है तो वह **क्षमा मध्यम क्षमा** है।

किन्तु जब उसीप्रकार की परिस्थितियों में वह यह सोचता है कि जान से मार देने पर भी परमब्रह्मस्वरूप अमूर्त आत्मा की अर्थात् मेरी कोई हानि नहीं होती। जो ज्ञानी इसप्रकार के चिन्तन के आधार पर समताभाव बनाये रखता है, समरसी भाव में स्थित रहता है; तब उस ज्ञानी के उत्तम क्षमा होती है ।।११५।।

इसके बाद **तथा चोक्तं श्री गुणभद्रस्वामिभिः** – तथा श्री गुणभद्र स्वामी भी कहते हैं – ऐसा लिखकर चार छन्द प्रस्तुत करते हैं, जिनमें क्रोध से उत्पन्न होनेवाली हानि को प्रदर्शित करनेवाला पहला छन्द इसप्रकार है –

(वसंततिलका)

चित्तस्थमप्यनबुद्ध्य हरेण जाड्यात्
क्रुद्ध्वा बहिः किमपि दग्धमनंगबुद्ध्या।
घोरामवाप स हि तेन कृतामवस्थां
क्रोधोदयाद्भवति कस्य न हार्यहानिः ।।६०।।[१]

(रोला)

अरे हृदय में कामभाव के होने पर भी।
क्रोधित होकर किसी पुरुष को काम समझकर ।।
जला दिया हो महादेव ने फिर भी विह्वल।
क्रोधभाव से नहीं हुई है किसकी हानि ?।।६०।।

कामवासना अपने चित्त में विद्यमान होने पर भी अपनी जड़बुद्धि के कारण उसे न पहिचान कर शंकर ने क्रुद्ध होकर बाह्य में किसी व्यक्ति को कामदेव समझ कर जला दिया और हृदय में स्थित कामवासना से विह्वल हो उठे। इसीलिए कहा है कि क्रोध के उदय से किसे कार्यहानि नहीं होती ? तात्पर्य यह है कि क्रोधियों के काम तो बिगड़ते ही हैं।

उक्त छन्द में क्रोध कषाय से होनेवाली हानि की चर्चा करके क्रोध न करने की प्रेरणा दी गई है।

अपनी बात को बल प्रदान करने के लिए महादेव द्वारा कामदेव को जलाने संबंधी लोकप्रसिद्ध घटना का उदाहरण दिया गया है।

लोक में यह बात प्रसिद्ध है कि कामदेव की कुचेष्टा से क्रोधित होकर शंकर महादेव ने अपने माथे पर तीसरा नेत्र खोलकर उससे निकली हुई भयंकर ज्वाला से कामदेव को भस्म कर दिया था। ऐसा होने पर भी उसके बाद महादेव को कामभाव

१. आत्मानुशासन, छंद २१६

से विह्वल होते देखा गया। अतः यहाँ यह कहा जा रहा है कि **जब स्वयं कामभाव से पीड़ित रहे तो फिर काम को जलाने से क्या लाभ हुआ ? क्रोधित होने का क्या परिणाम हुआ ?**

अरे भाई क्रोध से तो सभी की हानि ही होती है, लाभ नहीं ।।६०।।

मान कषाय से होनेवाले दोषों का निरूपक दूसरा छन्द इसप्रकारहै–

(वसंततिलका)

चक्रं विहाय निजदक्षिणबाहुसंस्थं
यत्प्राव्रजन्ननु तदैव स तेन मुच्येत्।
क्लेशं तमाप किल बाहुबली चिराय
मानो मनागपि हतिं महतीं करोति ।।६१।।[२]

(वीर)

अरे हस्तगत चक्ररत्न को बाहुबली ने त्याग दिया।
यदि न होता मान उन्हें तो मुक्तिरमा तत्क्षण वरते ।।
किन्तु मान के कारण ही वे एक बरस तक खड़े रहे।
इससे होता सिद्ध तनिक सा मान अपरिमित दुख देता।।६१।।

अपने दाहिने हाथ में समागत चक्र को छोड़कर जब बाहुबली ने दीक्षा ली थी, यदि मान कषाय नहीं होती तो वे उसी समय मुक्ति प्राप्त कर लेते; किन्तु वे मान कषाय के कारण चिरकाल तक क्लेश को प्राप्त हुए। इससे सिद्ध होता है कि थोड़ा भी मान बहुत हानि करता है।

उक्त छन्द में बाहुबली मुनिराज के उदाहरण के माध्यम से यह सिद्ध किया गया है कि **थोड़ा-सा भी मान चिरकाल तक दुःख भोगने को बाध्य कर देता है ।।६१।।**

माया कषाय से होनेवाले दोषों का निरूपक तीसरा छंद इसप्रकारहै–

(अनुष्टुभ्)

भेयं मायामहागर्तान्मिथ्याघनतमोमयात्।
यस्मिन् लीना न लक्ष्यन्ते क्रोधादिविषमाहयः ।।६२।।[२]

(वीर)

अरे देखना सहज नहीं क्रोधादि भयंकर सांपों को।
क्योंकि वे सब छिपे हुए हैं मायारूपी गर्तों में ।।
मिथ्यातम है घोर भयंकर डरते रहना ही समुचित।
यह सब माया की महिमा है बचके रहना ही समुचित ।।६२।।

जिस मायारूपी गड्ढे में छिपे क्रोधादि भयंकर सांपों को देखना सहज नहीं है;

१. आत्मानुशासन, छंद २१७ २. वही, छंद २२१

मिथ्यात्वरूपी घोर अंधकारवाले उस मायारूपी महान गड्ढे से डरते रहना योग्य है।

इस छन्द में माया कषाय को मिथ्यात्वरूपी घोर अंधकारवाला गड्ढा (गर्त) बताया गया है और साथ में यह भी कहा गया है कि उस मायारूपी गड्ढे में क्रोधादि कषायरूपी भयंकर विषैले सांप छुपे रहते हैं। वह माया क्रोधादिक कषायोंरूपी सांपों का घर है; अत: माया कषाय से सावधान रहना अत्यन्त आवश्यक है॥६३॥

लोभ कषाय के दोषों का निरूपक चौथा छन्द इसप्रकार है –

(हरिणी)

वनचरभयाद्धावन् दैवाल्लताकुलवालधि:
किल जडतया लोलो वालव्रजेऽविचलंस्थित:।
बत स चमरस्तेन प्राणैरपि प्रवियोजित:
परिणततृषां प्रायेणैवंविधा हि विपत्तय:॥६३॥[1]

(वीर)

वनचर भय से भाग रही पर उलझी पूँछ लताओं में।
दैवयोग से चमर गाय वह मुग्ध पूँछ के बालों में॥
खड़ी रही वह वहीं मार डाला वनचर ने उसे वहीं।
इसप्रकार की विकट विपत्ति मिलती सभी लोभियों को॥६३॥

वन में रहनेवाले शिकारी भील आदि मनुष्य और शेर आदि मांसाहारी पशुओं के भय से भागती हुई गाय की पूंछ दुर्भाग्य से कांटोंवाली लता में उलझ जाने पर जड़ता के कारण बालों के गुच्छे के प्रति लोभ के वश वह गाय वहीं खड़ी रह गई और अरे रे उस गाय को वनचर द्वारा मार डालागया। तात्पर्य यह है कि **बालों के गुच्छे के लोभ में गाय ने प्राण गंवा दिये। जो लोग लोभ, लालच और तृष्णा के वश हैं, उनकी ऐसी ही दुर्दशा होती है, उन पर ऐसी ही विपत्तियाँ आती रहती हैं।**

वन में रहनेवाली नील गायों में कुछ गायों की पूँछ चँवरों जैसी होती है, उनकी पूँछ में सुन्दरतम बालों के गुच्छे होते हैं। बालों के उन गुच्छों से चँवर बनाये जाते हैं। इसीकारण उन गायों को चमरी गाय कहा जाता है।

मांसाहारी जंगली जानवर और भील आदि शिकारी उनके पीछे पड़े रहते हैं। वे बेचारी उनके भय से आकुल-व्याकुल होकर यहाँ-वहाँ भागती रहती हैं। ऐसी ही एक गाय, जिसके पीछे वनचर शिकारी लगे हुए थे; जान बचाकर भाग रही थी। उसकी पूँछ के बाल किसी झाड़ी में उलझ गये।

१. आत्मानुशासन, छंद २२३

यदि वह चाहती तो उन बालों की परवाह किये बिना भाग सकती थी; किन्तु अपने सुन्दरतम बालों के मोह में वह वहीं खड़ी रही और शिकारियों की शिकार हो गई।

वनवासी सन्तों को ऐसी घटनायें देखने को प्राय: प्रतिदिन मिलती रहती हैं।अत: आचार्यदेव ने उक्त घटना के माध्यम से लोभ कषाय की दुखमयता को स्पष्ट किया है। उनका कहना यह है कि यह बातकिसी एक गाय की नहीं है। **सभी लोभियों की प्राय: ऐसी ही दुर्दशा होती है। अत: लोभ कषाय जितनी जल्दी छोड़ दी जावे, उतना ही अच्छाहै।**

इसप्रकार यहाँ टीकाकार मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव ने **आचार्य गुणभद्र के आत्मानुशासन में समागत चार कषायों की निरर्थकता बतानेवाले छन्दों में से चार कषाय संबंधी चार छन्द प्रस्तुत कर दिये हैं; जो अत्यन्त उपयोगी और प्रसंगानुरूप हैं॥६३॥**

इसके बाद टीकाकार मुनिराज **तथाहि** लिखकर एक छन्द स्वयं भी लिखते हैं; जो इसप्रकार है –

(आर्या)

क्षमया क्रोधकषायं मानकषायं च मार्दवेनैव।
मायामार्जवलाभाल्लोभकषायं च शौचतो जयतु॥१८२॥

(सोरठा)

क्षमाभाव से क्रोध, मान मार्दव भाव से।
जीतो माया-लोभ आर्जव एवं शौच से॥१८२॥

क्रोध कषाय को क्षमा से, मान कषाय को मार्दव से, माया कषाय को आर्जव से और लोभ कषाय को शौच से जीतो।

इस छन्द में चारों कषायों के जीतने की बात कही है। कहा है कि **क्रोध को क्षमा से, मान को मार्दव से, माया को आर्जव से और लोभ को शौचधर्म से जीतना चाहिए॥१८२॥**

नियमसार गाथा ११६

विगत गाथा में चारों कषायों को जीतने का उपाय बताकर अब इस गाथा में कहते हैं कि शुद्धज्ञान को स्वीकार करनेवाले को प्रायश्चित्त होता है।

गाथा मूलत: इसप्रकार है –

उक्किट्ठो जो बोहो णाणं तस्सेव अप्पणो चित्तं।
जो धरइ मुणी णिच्चं पायच्छित्तं हवे तस्स॥११६॥

(हरिगीत)

उत्कृष्ट निज अवबोध अथवा ज्ञान अथवा चित्त जो।
वह चित्त जो धारण करे वह संत ही प्रायश्चित्त है ।।११६।।

जो मुनिराज अनंतधर्मवाले उस त्रिकाली ध्रुव भगवान आत्मा का उत्कृष्टबोध, ज्ञान अथवा चित्त को नित्य धारण करते हैं; उन मुनिराज को प्रायश्चित्त होता है।

इस गाथा के भाव को टीकाकार मुनिराज इसप्रकार स्पष्ट करते हैं –

''यहाँ शुद्धज्ञान को स्वीकार करनेवाले को प्रायश्चित्त है – ऐसा कहा है।

जो विशेष धर्म उत्कृष्ट है, वस्तुत: वही परमबोध है – ऐसा अर्थ है। बोध, ज्ञान और चित्त अलग-अलग पदार्थ नहीं हैं, एक ही हैं। ऐसा होने से ही उस परमधर्मी जीव को प्रायश्चित्त है अर्थात् उत्कृष्टरूप से चित्त है, ज्ञान है। जो परमसंयमी इसप्रकार के चित्त को धारण करता है, उसे वस्तुत: निश्चयप्रायश्चित्त होता है।''

आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजी स्वामी इस गाथा के भाव को इसप्रकार स्पष्ट करते हैं –

''त्रिकाली सहज ज्ञानस्वभाव ही धर्मीजनों के लिए निश्चय से प्रायश्चित्त है। वस्तु तो त्रिकाल प्रायश्चित्तरूप ही है और उसे स्वीकार करने पर पर्याय में प्रायश्चित्त होता है। यहाँ प्रायश्चित्त होने की बात कहकर उसके कारणरूप त्रिकाली प्रायश्चित्तस्वरूप आत्मा को बताया है। आत्मा तीनों काल प्रायश्चित्त स्वरूप है। उसी में से पर्याय में प्रायश्चित्त प्रगट होता है। **यदि द्रव्य प्रायश्चित्त स्वरूप न हो, तो पर्याय में प्रायश्चित्त कहाँ से प्रगट होता है।**

इसप्रकार यहाँ द्रव्य-पर्याय की संधिपूर्वक कथन किया है। जैसे आत्मा में सर्वज्ञशक्ति त्रिकाल है, तो पर्याय में सर्वज्ञता प्रगट होती है; उसीप्रकार वस्तु त्रिकाल वीतरागी प्रायश्चित्तस्वरूप है, तो उसमें से पर्याय में वीतरागी प्रायश्चित्त प्रगट होता है। बस, धर्मी को तो अन्तर्मुख होकर स्वभाव में ढलना है, प्रायश्चित्त सहज ही प्रगट होता है।[१]

निमित्त या विकल्प का आलम्बन वास्तविक प्रायश्चित्त नहीं है। त्रिकाल प्रायश्चित्तस्वरूप परमधर्मी को अपने आत्मा के अवलम्बन से ही निश्चय प्रायश्चित्त प्रगट होता है और वही मुक्ति का कारण है।

इसलिए जो नित्यस्वभाव को नित्य धारण करते हैं अर्थात् प्रतिसमय उसका अवलम्बन करते हैं, ऐसे परमसंयमी साधु को निश्चियप्रायश्चित्त होता है।[२]''

उक्त गाथा में यह कहा गया है कि उत्कृष्ट ज्ञान का नाम ही चित्त है; क्योंकि

१. नियमसार प्रवचन, पृष्ठ ९७७ २. वही, पृष्ठ ९७८

ज्ञान, बोध और चित्त एकार्थवाची ही हैं। प्राय: शब्द उत्कृष्टता का सूचक है; इसप्रकार उत्कृष्ट ज्ञान ही प्रायश्चित्त है। यही कारण है कि उत्कृष्टज्ञान को धारण करनेवाले परमसंयमी सन्तों के ही निश्चय-प्रायश्चित्त होता है ।।११६।।

इसके बाद टीकाकार एक छन्द लिखते हैं; जो इसप्रकार है –

(शालिनी)

य: शुद्धात्मज्ञानसंभावनात्मा
प्रायश्चित्तमत्र चास्त्येव तस्य।
निर्धूतांह:संहतिं तं मुनीन्द्रं
वन्दे नित्यं तद्गुणप्राप्तयेऽहम् ।।१८३।।

(हरिगीत)

शुद्धात्मा के ज्ञान की संभावना जिस संत में।
आत्मरत उस सन्त को तो नित्य प्रायश्चित्त है।।
धो दिये सब पाप अर निज में रमे जो संत नित।
मैं नमूँ उनको उन गुणों को प्राप्त करने के लिए ।।१८३।।

इस लोक में जो मुनिराज शुद्धात्मज्ञान की सम्यक् भावना रखते हैं; उन मुनिराज को प्रायश्चित्त है ही। जिन्होंने पापसमूह को धो डाला है, उन मुनिराज को उनमें उपलब्ध गुणों की प्राप्ति हेतु मैं उन्हें नमस्कार करता हूँ।

आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजी स्वामी इस छन्द के भाव को इसप्रकार स्पष्ट करते हैं –

''त्रिकाली शुद्धात्मज्ञान की सम्यक्भावना भानेवाले मुनियों को ही वास्तव में प्रायश्चित्त होता है। अहो ! लाखों, करोड़ों कथन करके भी अंत में तो द्रव्यस्वभाव में अन्तर्मुख होने का ही उपदेश देते हैं।

प्रायश्चित्त तो निर्मलपर्याय है, परन्तु उसका आधार कौन है?

उसका आधार तो शुद्ध ज्ञानस्वभावी ध्रुव कारणरूप वस्तु ही है। उसे स्वीकार करने से और उसकी भावना से ही प्रायश्चित्त होता है। उस स्वभाव की भावना करने से पुण्य-पाप की उत्पत्ति नहीं होती। इसलिए कहा है कि जिन्होंने स्वभाव की सम्यक्भावना से समस्त पापसमूह को नष्ट कर दिया है – उन मुनीन्द्रों को उनके गुणों की प्राप्ति के लिए मैं नित्य वंदन करता हूँ।

देखो, यह प्रायश्चित्त किसी दूसरे से लेना नहीं पड़ता; परन्तु अन्तर में स्थित द्रव्य की भावना द्वारा ही प्रगट होता है।[१]''

१. नियमसार प्रवचन, पृष्ठ ९७८-९७९

इस कलश में दो बातें कही गई हैं। प्रथम तो यह कि जो वीतरागी संत शुद्धात्मज्ञान की सम्यक् भावना रखते हैं; उनके प्रायश्चित्त सदा ही है और दूसरी बात यह कि उन जैसे गुण मुझे भी प्राप्त हो जावें – इस भावना से सम्पूर्ण पाप भावों से रहित भावलिंगी सन्तों को मैं नमस्कार करता हूँ।।१८३।।

नियमसार गाथा ११७

विगत गाथा में आत्मज्ञान एवं आत्मध्यान ही प्रायश्चित्त है – यह कहने के उपरान्त अब इस गाथा में यह कहते हैं कि मुनियों का तपश्चरण ही प्रायश्चित्त है।

गाथा मूलत: इसप्रकार है –

किं बहुणा भणिएण दु वरतवचरणं महेसिणं सव्वं।
पायच्छित्तं जाणह अणेयकम्माण खयहेऊ।।११७।।

(हरिगीत)

कर्मक्षय का हेतु जो है ऋषिगणों का तपचरण।
वह पूर्ण प्रायश्चित्त है इससे अधिक हम क्या कहें।।११७।।

अधिक कहने से क्या लाभ है ? इतना कहना ही पर्याप्त है कि अनेक कर्मों के क्षय का हेतु जो महर्षियों का तपश्चरण है, उस सभी को प्रायश्चित्त जानो।

इस गाथा के भाव को टीकाकार मुनिराज इसप्रकार स्पष्ट करते हैं –

''यहाँ परमतपश्चरण में लीन परमजिनयोगीश्वरों को निश्चय-प्रायश्चित्त है। इसप्रकार निश्चयप्रायश्चित्त ही समस्त आचरणों में परम आचरण है – ऐसा कहा है।

बहुत असत् प्रलापों से बस होओ, बस होओ। निश्चय-व्यवहार स्वरूप परमतपश्चरणात्मक, परमजिनयोगियों को अनादि संसार से बंधे हुए द्रव्य-भावकर्मों के सम्पूर्ण विनाश का कारण, एकमात्र शुद्ध-निश्चयप्रायश्चित्त है – इसप्रकार हे शिष्य तू जान।''

आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजी स्वामी इस गाथा के भाव को इसप्रकार स्पष्ट करते हैं –

''जो स्वभाव की भावना भाकर परम तपश्चरण में लीन हुए हैं – ऐसे वीतरागी मुनियों को निश्चयप्रायश्चित्त होता है। उनकी दशा ही प्रायश्चित्त स्वरूप है। द्रव्यस्वभाव में ढली हुई पर्याय में प्रतिक्षण वीतरागता बढ़ती जाती है। इसलिए वही सभी आचरणों में उत्तम आचरण है और वही प्रायश्चित्त है। स्वभावसन्मुख होकर उसकी भावना में लीन होना ही सभी आचरणों में श्रेष्ठ आचरण है। इसके सिवाय राग या पंच महाव्रत की बाह्य क्रियायें वास्तव में परम आचरण नहीं हैं।''[१]

१. नियमसार प्रवचन, पृष्ठ ९८०

मुनिराज को शुभ विकल्पों के समय भी स्वभाव में जितनी स्थिरता वर्तती है, उतना निश्चयप्रायश्चित्त होता है और वह कर्मक्षय कारण है। व्यवहार तप के काल में भी कर्मों का अभाव होकर जो वीतरागता हुई है, वही कर्मक्षय का कारण है और वही निश्चयप्रायश्चित्त है।

जितनी वीतरागता है, उतना निश्चयप्रायश्चित्त है। मुनिराज को प्रतिक्षण होनेवाली स्वभाव की भावना से कर्मों का क्षय हो जाता है।

पर्याय जब अंतर में ढलती है, तभी भावकर्म और द्रव्यकर्म का अनादिकालीन प्रवाह टूट जाता है, इसलिए उस पर्याय को ही प्रायश्चित्त जानना चाहिए।[१]''

इसप्रकार इस गाथा में यही कहा गया है कि अधिक विस्तार में जाने से क्या लाभ है और एक ही बात बार-बार दुहराने से भी क्या उपलब्ध होनेवाला है ? समझने की बात तो एकमात्र यही है कि मुनि-अवस्था में होनेवाली तीन कषाय के अभावरूप वीतरागपरिणति और शुद्धोपयोगरूप धर्म ही निश्चयप्रायश्चित्त है।।११७।।

इसके बाद टीकाकार मुनिराज पाँच छन्द लिखते हैं। उनमें से पहला छन्द इसप्रकार है –

(द्रुतविलंबित)

अनशनादितपश्चरणात्मकं
सहजशुद्धचिदात्मविदामिदम्।
सहजबोधकलापरिगोचरं
सहजतत्त्वमघक्षयकारणम्।।१८४।।

(दोहा)

अनशनादि तप चरणमय और ज्ञान से गम्य।
अघक्षयकारण तत्त्वनिज सहजशुद्धचैतन्य।।१८४।।

अनशनादि तपश्चरणात्मक सहज शुद्ध चैतन्यस्वरूप को जाननेवालों को सहज ज्ञानकला के गोचर सहजतत्त्वरूप भगवान आत्मा पुण्य-पाप के क्षय का कारण है।

गुरुदेवश्री कानजी स्वामी इस छन्द का भाव इसप्रकार स्पष्ट करते हैं –

''जब वर्तमान निर्मलपर्याय त्रिकाली तत्त्व में ढलकर, उसे अनुभवगोचर करती है; तब पुण्य-पाप का क्षय हो जाता है – यही प्रायश्चित्त है।

निर्दोष त्रिकाली आत्मस्वभाव के आश्रय से जो निर्विकल्प ज्ञान प्रगट होता है, वह प्रायश्चित्त है। अपने सहज शुद्धात्म तत्त्व को जानना ही सच्ची कला है। सम्यग्ज्ञान द्वारा जाना गया त्रिकाली सहजतत्त्व विकार के क्षय का कारण है।''[२]

१. नियमसार प्रवचन, पृष्ठ ९८० २. वही, पृष्ठ ९८२

ध्यान रहे यहाँ अघ शब्द का प्रयोग पुण्य और पाप – दोनों के अर्थ में किया गया है; क्योंकि शुद्धात्मा के ध्यानरूप निश्चयप्रायश्चित्त पुण्य और पाप – दोनों का नाश करनेवाला है।

जिसप्रकार **क** का अर्थ पृथ्वी, **ख** का अर्थ आकाश होता है; उसीप्रकार **घ** का अर्थ भगवान आत्मा होता है। **घ** अर्थात् भगवान आत्मा की विराधना का जो भी कारण बने, वह सभी अघ हैं। चूंकि पुण्य और पाप दोनों ही आत्मा के विराधक भाव हैं; अत: वे अघ हैं।

यद्यपि सामान्य लोक में अघ शब्द का अर्थ पाप किया जाता है; तथापि अध्यात्मलोक में अघ का अर्थ और पुण्य और पाप दोनों होता है।।१८४।।

दूसरा छन्द इसप्रकार है –

(शालिनी)

प्रायश्चित्तं ह्युत्तमानामिदं स्यात्
स्वद्रव्येऽस्मिन् चिन्तनं धर्मशुक्लम्।
कर्मव्रातध्वान्तसद्बोधतेजो –
लीनं स्वस्मिन्निर्विकारे महिम्नि ।।१८५।।

(रोला)

अरे प्रायश्चित्त उत्तम पुरुषों को जो होता।
धर्मध्यानमय शुक्लध्यानमय चिन्तन है वह।।
कर्मांधकार का नाशक यह सद्बोध तेज है।
निर्विकार अपनी महिमा में लीन सदा है।।१८५।।

उत्तम पुरुषों को होनेवाला यह प्रायश्चित्त वस्तुत: स्वद्रव्य का धर्मध्यान और शुक्लध्यानरूप चिन्तन है, कर्मसमूह के अंधकार को नष्ट करने के लिए सम्यग्ज्ञानरूपी तेज है और अपनी निर्विकार महिमा में लीनतारूप है।

गुरुदेवश्री कानजी स्वामी इस छन्द का भाव इसप्रकार स्पष्ट करते हैं –

''जो स्वद्रव्य का धर्मध्यान और शुक्लध्यानरूप चिन्तन है, कर्मसमूह के अंधकार को नष्ट करने के लिए जो सम्यग्ज्ञानरूपी सूर्य है और अपनी निर्विकार महिमा में लीन है – ऐसा यह प्रायश्चित्त वास्तव में उत्तम पुरुषों को होता है।[१]

पर के लक्ष्य से उत्पन्न होनेवाले पुण्य-पाप भाव दोष हैं तथा स्वद्रव्य के चिन्तन से प्रगट होनेवाली निर्मलपर्याय प्रायश्चित्त है।[२]

चैतन्य में ही चेतना की एकाग्रता होना स्वद्रव्य का चिन्तन है। इसमें राग नहीं है, इसलिए यह प्रायश्चित्तस्वरूप है तथा यही प्रायश्चित्त सम्यग्दर्शन सहित चारित्र

१. नियमसार प्रवचन, पृष्ठ ९८२-९८३ २. वही, पृष्ठ ९८३

है, जो कि उत्तम पुरुषों को होता है।[१]''

उक्त छन्द में स्वद्रव्य के चिन्तनात्मक धर्मध्यान और शुक्लध्यान को प्रायश्चित्त कहा है; जबकि महाशास्त्र तत्त्वार्थसूत्र में चिन्तन के निरोध को ध्यान कहा है। यद्यपि धर्मध्यान के सभी भेद चिन्तनात्मक ही हैं,तथापि शुक्लध्यान तो मा चिंतह[३] – चिन्तवन मत करो के रूप में प्रतिष्ठित है।

एक बात और भी है कि यहाँ प्रायश्चित्त को चिन्तनरूप कहकर भी निज महिमा में लीनतारूप भी कहा है। यह प्रायश्चित्त की महिमा वाचक छन्द है; अत: निश्चय-व्यवहार प्रायश्चित्त की संधि बिठाकर यथायोग्य समझ लेना चाहिए।।१८५।।

तीसरा छन्द इसप्रकार है –

(मंदाक्रांता)

आत्मज्ञानाद्भवति यमिनामात्मलब्धि: क्रमेण
ज्ञानज्योतिर्निहतकरणग्रामघोरान्धकारा।
कर्मारण्योद्भवदवशिखाजालकानामजस्रं
प्रध्वंसेऽस्मिन् शमजलमयीमाशु धारां वमन्ती ।।१८६।।

(हरिगीत)

आत्म की उपलब्धि होती आतमा के ज्ञान से।
मुनिजनों के करणरूपी घोरतम को नाशकर।।
कर्मवन उद्भव भवानल नाश करने के लिए।
वह ज्ञानज्योति सतत् शमजलधार को है छोड़ती।।१८६।।

संयमी जनों को आत्मज्ञान से क्रमश: आत्मोपलब्धि होती है। उस आत्मोपलब्धि ने ज्ञानज्योति द्वारा इन्द्रियसमूह के घोर अंधकार का नाश किया है और वह आत्मोपलब्धि कर्मवन से उत्पन्न भवरूपी दावानल की शिखाओं के समूह का नाश करने के लिए उस पर निरंतर समतारूपी जल की धारा को तेजी से छोड़ती है, बरसाती है।

इस छन्द के भाव को गुरुदेवश्री कानजी स्वामी इसप्रकार स्पष्ट करते हैं –

१. नियमसार प्रवचन, पृष्ठ ९८३

२. **मा चिट्ठह मा जंपह मा चिंतह किं वि जेण होइ थिरो।**
अप्पा अप्पम्मि रओ इणमेव परं हवे झाणं।।५६।।
बोलो नहीं सोचो नहीं अर चेष्टा भी मत करो।
उत्कृष्टतम यह ध्यान है निज आतमा में रत रहो।।५६।। – द्रव्यसंग्रह, गाथा ५६

''जो आत्मोपलब्धिरूप ज्ञानज्योति इन्द्रिय समूह के घोर अन्धकार का नाश करनेवाली है, कर्मवन से उत्पन्न दावानल के शिखाजाल का नाश करने के लिए समतारूपी जल की धारा बरसाती है। – ऐसी आत्मोपलब्धि यमियों, संयमियों को क्रमशः आत्मज्ञान से होती है।[१]

जैसे जब बड़े-बड़े जंगलों में आग लग जाती है, तब उनकी आग साधारण पानी से नहीं बुझती, उसे बुझाने के लिए मूसलाधार वर्षा चाहिए; उसीप्रकार **इस संसार में आकुलतारूपी अग्नि जल रही है, उसे बुझाने के लिए आत्मा की शुद्ध परिणति रूपी शान्त जल की जोरदार वर्षा चाहिए।**

मुनिराज के अन्तर में ऐसी शान्त निराकुल उपशमरस झरती हुई परिणति प्रगट होती है, जिससे उनकी कषाय अग्नि बुझ जाती है। इसी आत्म-उपलब्धि का नाम प्रायश्चित्त है।[२]''

उक्त छन्द का सार यह है कि निश्चयप्रायश्चित्त आत्मोपलब्धिरूप है और आत्मोपलब्धि त्रिकाली ध्रुव भगवान आत्मा के श्रद्धान, ज्ञान और अनुभवरूप है।

यह आत्मोपलब्धि अर्थात् निश्चयप्रायश्चित्त पंचेन्द्रिय भोगों संबंधी घोर अंधकार का नाशक है और कर्मरूपी भयंकर जंगल में लगे हुए संसाररूपी दावानल की शिखाओं को शान्त करनेवाला है तथा उक्त दावानल अर्थात् भयंकर आग को बुझाने के लिए मूसलाधार बरसातहै; क्योंकि जंगल में लगी आग को मूसलाधार बरसात के अलावा कौन बुझा सकता है ?

तात्पर्य यह है कि निश्चयप्रायश्चित्तरूप **आत्मोपलब्धि ही विषय-कषाय की आग को बुझा सकती है,** अन्य कोई नहीं ।।१८६ ।।

चौथा छन्द इसप्रकार है –

(उपजाति)

अध्यात्मशास्त्रामृतवारिराशे-
र्मयोद्धृता संयमरत्नमाला।
बभूव या तत्त्वविदां सुकण्ठे
सालंकृतिर्मुक्तिवधूधवानाम् ।।१८७।।

(भुजंगप्रयात)

जिनशास्त्ररूपी अमृत उदधि से।
बाहर हुई संयम रत्नमाला।।
मुक्तिवधू वल्लभ तत्त्वज्ञानी।
के कण्ठ की वह शोभा बनी है।।१८७।।

१. नियमसार प्रवचन, पृष्ठ ९८३ २. वही, पृष्ठ ९८३-९८४

अध्यात्मशास्त्ररूपी अमृतसागर में से मेरे द्वारा जो संयमरूपी रत्नमाला निकाली गई है, वह रत्नमाला मुक्तिवधू के वल्लभ तत्त्व-ज्ञानियों के सुन्दर कण्ठ का आभूषण बनी है।

आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजी स्वामी इस छन्द का भाव इसप्रकार स्पष्ट करते हैं –

''अध्यात्मशास्त्र अमृतसमुद्र है। आचार्यदेव ने उसमें से यह संयमरूपी रत्नमाला बाहर निकाली है। संयम अर्थात् वीतरागता ही समस्त शास्त्रों का तात्पर्य है। वीतरागी संयम दशा में ही प्रतिक्रमण, प्रायश्चित्त आदि सभी समा जाते हैं। परपदार्थ के लक्ष्य से रहित और स्वद्रव्य में एकाग्रतारूप वीतरागता ही सर्व शास्त्रों का सार है।[१]

यह रत्नमाला तत्त्वज्ञानियों के कंठ का आभूषण है। तत्त्वज्ञानी जीव मुक्तिवधू के वल्लभ हैं तथा उनका आभूषण वीतरागी संयम है।

उनकी भावना में भी वीतरागता का ही घोलन होता है और कंठ में से ध्वनि भी वीतरागता की ही उठती है।[२]''

इस छन्द में आचार्यदेव कह रहे हैं कि **अध्यात्मशास्त्रों के गंभीर अध्ययन से, उसमें प्रतिपादित भगवान आत्मा के स्वरूप को जानकर जो लोग उसमें ही अपनापन स्थापित करते हैं; वे तत्त्वज्ञानी जीव निश्चयरूप से परमसंयम को धारण कर मुक्ति को प्राप्त कर अनंतकाल तक अनंत अतीन्द्रिय आनन्द का उपभोग करते हैं।।१८७।।**

पाँचवाँ छन्द इसप्रकार है –

(उपेन्द्रवज्रा)

नमामि नित्यं परमात्मतत्त्वं
मुनीन्द्रचित्ताम्बुजगर्भवासम्।
विमुक्तिकांतारतसौख्यमूलं
विनष्टसंसारद्रुममूलमेतत् ।।१८८।।

(भुजंगप्रयात)

भवरूप पादप जड़ का विनाशक।
मुनीराज के चित कमल में रहे नित।।
अर मुक्तिकांतारतिजन्य सुख का।
मूल जो आतम उसको नमन हो।।१८८।।

१. नियमसार प्रवचन, पृष्ठ ९८५ २. वही, पृष्ठ ९८५

मुनिराजों के चित्तकमल के भीतर जिसका आवास है, जो मुक्तिरूपी कान्ता की रति के सुख का मूल है और जिसने संसाररूपी वृक्ष के मूल (जड़) का नाश किया है; ऐसे इस परमात्मतत्त्व को मैं नित्य नमन करता हूँ।

आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजी स्वामी इस छन्द के भाव को इसप्रकार स्पष्ट करते हैं –

''जैसे चंदन के वृक्ष में शीतलता के कारण सर्प उससे लिपटे रहते हैं; उसीप्रकार मुनिराज चैतन्यरूपी चंदनवृक्ष की शीतलता के कारण उससे लिपटे रहते हैं अर्थात् उसी में लीन रहते हैं। उनकी परिणति में एक परमात्मतत्त्व ही बस रहा है।

वह परमात्मतत्त्व सादि-अनन्त परमानन्दमय मुक्ति का मूल है। मुक्ति परिणति इस परमात्मतत्त्व में से ही प्रगट होती है। यह परमात्मतत्त्व संसारवृक्ष के मूल का नाश करनेवाला है। तथा इसका आश्रय करने से संसारवृक्ष का समूल नाश होकर मुक्ति की उत्पत्ति होती है।

इसप्रकार यहाँ संसार के मूल और मुक्ति के मूल – इन दो मूलों की चर्चा की है।

संसार का मूल उखाड़ने वाले परमात्मतत्त्व को मैं नमन करता हूँ।

परमात्मतत्त्व स्वयं त्रिकाली ध्रुव है तथा मुक्ति के उत्पाद का मूल है और संसार का व्यय करनेवाला है।[१]

यहाँ सिद्ध भगवान को परमात्मतत्त्व नहीं कहा; क्योंकि सिद्धदशा तो पर्याय है। उस सिद्धदशा का मूल कारण भी यह परमात्मतत्त्व ही है। अतः ऐसे परमात्मतत्त्व को मैं नमन करता हूँ तथा उसी की परिणति को एकाग्र करता हूँ।[२]''

उक्त छन्द में; जिसका आवास मुनिराजों के चित्तकमल है; उस निजात्मारूप परमात्मतत्त्व को नमस्कार किया गया है; क्योंकि सभी मुनिराज निरन्तर उसका ही ध्यान करते हैं। उनके ध्यान का एकमात्र ध्येय वह भगवान आत्मा ही है।

वह परमात्मतत्त्व मुक्तिकान्ता की रति के सुख का मूल है। तात्पर्य यह है कि उसमें अपनापन स्थापित करने से, उसके ज्ञान-श्रद्धानपूर्वक उसका ध्यान करने से मुक्ति में प्राप्त होनेवाले अतीन्द्रिय आनन्द की प्राप्ति होती है।

उक्त परमात्मतत्त्व के श्रद्धान, ज्ञान और ध्यान से संसाररूपी वृक्ष की तो जड़ ही उखड़ जाती है; अत: एकमात्र वही श्रद्धेय है, परमज्ञान का ज्ञेय और ध्यान का ध्येय भी वही है।।१८८।। ●

१. नियमसार प्रवचन, पृष्ठ ९८६ २. वही, पृष्ठ ९८६

पंचकल्याणक यानि आनन्द की खलबली मचा देने वाला महोत्सव
– भगवती आराधना

छहढाला प्रवचन

बहिरात्मा, अंतरात्मा एवं परमात्मा

बहिरातम, अंतरआतम परमातम, जीव त्रिधा हैं।
देह-जीव को एक गिनें बहिरातम तत्त्वमुधा है।।
उत्तम मध्यम जघन त्रिविध के अन्तर-आतम ज्ञानी।
द्विविध संगबिन शुध उपयोगी मुनि उत्तम निज ध्यानी।।४।।
मध्यम अंतर-आतम हैं जे देशव्रती अनगारी।
जघन कहे अविरतसमदृष्टि, तीनों शिवमगचारी।।
सकल निकल परमातम द्वैविध, तिनमें घाति निवारी।
श्री अरिहंत सकल परमातम, लोकालोक निहारी।।५।।
ज्ञानशरीरी त्रिविध कर्ममल वर्जित सिद्ध महन्ता।
ते हैं निकल अमल परमातम, भोगैं शर्म अनंता।।
बहिरातमता हेय जानि तजि, अंतर आतम हूजै।
परमातम को ध्याय निरंतर जो नित आनंद पूजै।।६।।

(सुप्रसिद्ध आध्यात्मिक विद्वान पण्डित दौलतरामजीकृत छहढाला पर गुरुदेवश्री के प्रवचन पाठकों के लाभार्थ यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं।)

निश्चय सम्यग्दर्शन में ऐसे शुद्ध जीव की अभेद श्रद्धा है जो एक अखंड ज्ञायकभावरूप है और जो शुभाशुभ भावरूप भी नहीं होता; उसमें भेद नहीं पड़ते। यहाँ व्यवहार सम्यग्दर्शन के विषयरूप सात तत्त्वों का कथन होने से इसमें जीव की अवस्था के प्रकार भी दिखाये हैं। निश्चय से सभी जीव एक-से ज्ञानस्वभावी हैं; अवस्था की अपेक्षा से जीवों के तीन प्रकार हैं – १. बहिरात्मा; २. अंतरात्मा, ३. परमात्मा।

ये तीनों जीव की पर्यायें हैं और द्रव्यस्वभाव से सभी जीव परमात्म स्वरूप परिपूर्ण हैं; ऐसे स्वभाव का भान करके उसमें एकाग्र होने से पर्याय में से बहिरात्मपना छूटकर जीव स्वयं अंतरात्मा तथा परमात्मा होता है। परमात्मा होने के बाद वह जीव फिर कभी बहिरात्मा नहीं होता; परन्तु बहिरात्मा जीव सम्यक्त्वादि द्वारा परमात्मा हो सकता है। अहा, प्रत्येक जीव में परमात्मा होने की स्वाधीन ताकत है – यह बात जैनशासन ही दिखाता है।

विश्व में भिन्न-भिन्न अनंत जीव हैं; प्रत्येक जीव का लक्षण ज्ञानचेतना है।

अवस्था में वे जीव तीन प्रकाररूप से परिणमन करते हैं, उनका स्वरूप यहाँ दिखाया जा रहा है –

बहिरात्मा का स्वरूप

जो अपने अंतरंग चेतनस्वरूप को भूलकर बाह्य में शरीर और जीव को एक मान रहा है, वह मिथ्यादृष्टि बहिरात्मा है; वह तत्त्वों में मूढ़ है। ऐसे बहिरात्मा जीव अनन्त हैं; जगत् के जीवों में से बहुत भाग मिथ्यादृष्टि-बहिरात्मा हैं; परन्तु यह बहिरात्मपना जीव का सच्चा स्वरूप नहीं है; अत: उसे छोड़कर जीव स्वयं अंतरात्मा तथा परमात्मा हो सकता है।

अंतरात्मा का स्वरूप

अंतर में देह से भिन्न आत्मस्वरूप को जो जानता है, वह अंतरात्मा है। नरक में भी जो जीव सम्यग्दृष्टि हैं, वे अंतरात्मा हैं। मेंढक, सिंह, बन्दर, हाथी इत्यादि तिर्यंच में भी जो जीव देह से भिन्न आत्मा का अंतर में अनुभव करते हैं, वे अंतरात्मा हैं। ऐसे अंतरात्मा असंख्यात हैं। चौथे से बारहवें गुणस्थान तक के जीव अंतरात्मा हैं, उनमें जो द्विविध परिग्रह से रहित हैं, अंतर में मिथ्यात्वादि मोह से रहित हैं, बाहर में वस्त्रादि से रहित हैं और शुद्धोपयोग से निजस्वरूप के ध्यान में एकाग्र हैं – ऐसे मुनिवर तो उत्तम अंतरात्मा हैं अर्थात् सातवें गुणस्थान से लेकर बारहवें गुणस्थान तक के जीव उत्तम अंतरात्मा हैं।

अंतर में आत्मा के अनुभव सहित जो देशव्रती श्रावक हैं या महाव्रती-मुनि हैं, वे मध्यम अंतरात्मा हैं अर्थात् पाँचवें व छठवें गुणस्थान वाले जीव मध्यम-अंतरात्मा हैं और जो अविरत सम्यग्दृष्टि हैं, जिनके व्रतादिक न होने पर भी अंतर में देह से भिन्न शुद्ध आत्मा के अनुभवरूप सम्यग्दर्शन हुआ है, वे जीव जघन्य अंतरात्मा हैं। इसप्रकार उत्तम, मध्यम और जघन्य – ऐसे तीन प्रकार के अंतरात्मा जानो। चौथे से बारहवें गुणस्थान तक के सभी अन्तरात्मा जीव आत्मा के जानने वाले हैं और मोक्षमार्ग में चलनेवाले हैं। बारह अंग के जाननेवाले गणधर भगवान और छोटा-सा एक सम्यग्दृष्टि मेंढक – ये दोनों अन्तरात्मा हैं, दोनों 'शिवमगचारी' हैं – मोक्षमार्गी हैं। देखो, चतुर्थ गुणस्थानवर्ती अविरत-सम्यग्दृष्टि गृहस्थ को भी मोक्षमार्गी कहा है। समन्तभद्र महाराज ने भी कहा है कि – **'गृहस्थो मोक्षमार्गस्थो निर्मोहो...।'** (रत्नकरण्ड श्रावकाचार)

परमात्मा का स्वरूप

जिन्होंने शुद्धात्मा के ध्यानरूप शुद्धोपयोग द्वारा घातिकर्मों को दूर करके, केवलज्ञानरूप परमपद प्रगट किया है, वे परमात्मा हैं, वे लोकालोक को प्रत्यक्ष जानने वाले हैं। ऐसे परमात्मा के दो प्रकार – अरिहंत परमात्मा और सिद्ध परमात्मा हैं। अरिहंत परमात्मा शरीरसहित होने से 'सकल' परमात्मा कहलाते हैं। ऐसे लाखों अरिहंत भगवंत विदेहक्षेत्र में इस समय विद्यमान हैं और सदैव होते रहते हैं। सिद्ध परमात्मा को शरीर नहीं होता, अतः वे निकलपरमात्मा कहलाते हैं, वे ज्ञानशरीरी हैं, अष्टकर्मों से रहित हैं। तेरहवें और चौदहवें गुणस्थान में विराजमान परमात्मा अरिहंतदेव हैं और गुणस्थानों से पार देहातीत सिद्ध परमात्मा हैं। चतुर्गति से मुक्तजीव ऐसे सिद्धपरमात्मा अनंत हैं और अरिहंत और सिद्ध परमात्मा आत्मा के अनंतसुख का अनुभव करते हैं।

ऐसे तीन प्रकार में से बहिरात्मरूप को हेय जानकर छोड़ना; अंतर में देह से भिन्न शुद्ध परम स्वरूप को पहचानकर अंतरात्मा होना और निरंतर उसी के ध्यान से परमात्मा होकर नित्य अनंत आनन्द का अनुभव करना। प्रत्येक जीव में ऐसे परमात्मा होने की ताकत है।

कोई कहता है – हम तो छोटे से कस्बे में रहने वाले, व्यापार-धंधा या नौकरी में जीवन बिताने वाले हैं तो ऐसे परमात्मा होने की इतनी बड़ी बात हमारी समझ में कैसे आवे ?

तो कहते हैं कि सुन भाई ! तू कस्बे में नहीं रहा, तू तो तेरे अनन्तगुण के बड़े वैभव में रहा है। दु:ख से छूटने के लिए आत्मा की दरकार करके जो समझना चाहे, उन सभी को समझ में आ जाये – ऐसी यह बात है। तेरे स्वरूप में जो है, वही तुझे दिखाई देता है, इससे अधिक कुछ नहीं कहते। भाई ! जीवन में यह चीज लक्ष्य में लेने योग्य है, इसके बिना दूसरी सब बातें थोथी हैं – निष्फल हैं, उनमें आत्मा का कुछ भी हित नहीं है। धन कमाने के लिए दिन-रात परिश्रम करके जीवन खो देते हो; परन्तु उस धन में या महल-मोटर में कहीं सुख की एक बूँद भी नहीं है। अरे ! स्वर्ग में भी सुख नहीं है, तब मनुष्य लोक के वैभव की क्या बात ? सुख तो आत्मा के सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र में ही है, उसके अतिरिक्त किसी भी बाह्य पदार्थ के लक्ष्य से तो आकुलता और दु:ख ही है। अत: आत्मा का सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र करना चाहिए। **(क्रमश:)**

नियमसार प्रवचन

शुद्धात्मा में विभाव नहीं

परमपूज्य सर्वश्रेष्ठ दिगम्बराचार्य कुन्दकुन्द के प्रसिद्ध परमागम नियमसार के शुद्धभावाधिकार की 43वीं गाथा पर हुये आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजीस्वामी के अध्यात्मरस गर्भित प्रवचनों का संक्षिप्त सार यहाँ दिया जा रहा है।

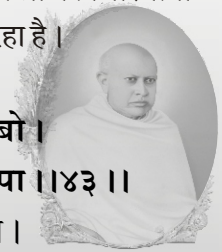

गाथा मूलत: इसप्रकार है –

णिद्दंडो णिद्दंद्दो णिम्ममओ णिक्कलो णिरालंबो।
णीरागो णिद्दोसो णिम्मूढो णिब्भयो अप्पा।।४३।।

निर्दण्ड है निर्द्वन्द है यह निरालम्बी आतमा।
निर्देह है निर्मूढ है निर्भयी निर्मम आतमा।।४३।।

आत्मा निर्दण्ड, निर्द्वन्द्व, निर्मम, नि:शरीर, निरालम्ब, निराग, निर्दोष, निर्मूढ़ और निर्भय है।

मन-वचन-काय के निमित्त से होनेवाला विकार दण्ड है, त्रिकालीस्वभाव नहीं है। राग-द्वेष का द्वैत शुद्धस्वभाव में नहीं है। शुद्धात्मा में शरीर, पर का अवलम्बन, राग, द्वेष, मूढ़ता, भय आदि नहीं हैं। पर्याय में होनेवाले दोष शुद्धस्वभाव में नहीं – ऐसा कहकर स्वभावदृष्टि कराने का प्रयोजन है।

(१) मन-वचन-काय के दण्ड पर्याय में हैं, शुद्धस्वभाव दंडरहित और कर्मरहित है।

'मनदण्ड, वचनदण्ड और कायदण्ड के योग्य द्रव्यकर्म तथा भावकर्म का अभाव होने से आत्मा निर्दण्ड है'।

आत्मा की एकसमय की पर्याय में मन-वचन-काय के लक्ष्य से होनेवाले शुभाशुभ भाव दण्ड हैं और वे एकसमय की अवस्थामात्र में हैं। भक्ति का भाव, उपवास का विकल्प, महाव्रत के परिणाम – ये सभी दण्ड हैं। हिंसा, झूठ, चोरी अशुभ राग है; दया, दान, पूजा आदि शुभराग है; दोनों ही दण्ड हैं। उस दण्ड के योग्य द्रव्यकर्म और भावकर्म का एकसमय की पर्याय में निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है।

यहाँ तीन प्रकार के दण्ड कहे, वे सभी एक ही समय में होते हैं – ऐसा मत समझना। मनोयोग के समय वचनयोग नहीं होता – ऐसा जानना। जब शुभ उपयोग हो तब अशुभ नहीं होता तथा शुभ-अशुभ के भी असंख्य प्रकार हैं, एकसमय में एक भेद होता है; परन्तु यहाँ समुच्चयरूप में कहा है कि मन-वचन-काय रूपदण्ड के परिणाम

पर्याय में होते हैं; किन्तु शुद्धस्वभाव की दृष्टि से देखा जाय तो दण्ड के परिणाम तथा उनके योग्य द्रव्यकर्मों का शुद्धस्वभाव में अभाव है – अत: आत्मा निर्दण्ड है।

यदि इस कथन से कोई ऐसा समझ बैठे कि पर्याय में भी आत्मा निर्दण्ड है तो यह बात असत्य है। आत्मा पर्याय में भी निर्दण्ड हो तो फिर कुछ भी करने को नहीं रहा और ऐसी दशा में पर्याय में प्रकट आनन्द भी होना चाहिये; किन्तु ऐसा नहीं है। यहाँ तो पर्यायबुद्धि छुड़ाने के लिये और स्वभावबुद्धि कराने के लिये दण्ड का शुद्धभाव में अभाव बताया है।

यह शुद्धभाव अधिकार है। जीव को शुद्धभाव की दृष्टि होने पर पर्यायबुद्धि छूटती है और अस्थिरता टलकर स्थिरता होने पर केवलज्ञान तथा मुक्ति प्राप्त होती है।

आत्मा की पर्याय में मन-वचन-काय के लक्ष्य से होनेवाले शुभाशुभ सभी भाव दण्ड हैं; किन्तु मात्र इतना ही आत्मा नहीं है। आत्मा त्रिकालशुद्ध है, अत: दण्ड की रुचि छोड़कर त्रिकालस्वभाव की रुचि करने से धर्मदशा प्रगट होगी।

प्रश्न – ऐसी निर्दण्ड दशा कौन-कब प्रकट कर सकता है?

समाधान – प्रत्येक योग्य जीव वह प्रकट कर सकता है। व्यापारी समझे कि व्यापार-धंधे की क्रिया जड़ है और व्यापार-धंधे के अशुभराग का दंड पर्याय में होने पर भी वह विकार आत्मा का स्वरूप नहीं है, आत्मा शुद्धस्वरूपी है; ऐसी दृष्टि रखना निर्दण्डपना है। पर्याय में दण्ड होने पर भी सच्ची दृष्टि चौबीस घण्टे रख सकता है। पर्याय में दण्ड न हो तो वीतरागता होनी चाहिये; परन्तु धर्मी समझता है कि विकार तो एकसमय मात्र की स्थितिवाला है – त्रिकाल में वह नहीं है। इसप्रकार त्रिकाली शुद्धभाव की रुचि होने पर पर्याय की रुचि नहीं रहती – यही धर्म है।

(२) जीवादि नव पदार्थ जगत में हैं; परन्तु अपने ध्रुव शुद्ध आत्मा में अन्य जीवों का तथा अजीवादि समस्त पदार्थों का अभाव है; अत: आत्मा द्वैतरहित है – निर्द्वन्द्व है।

'निश्चय से परम पदार्थ के अतिरिक्त समस्त पदार्थ समूह का (आत्मा में) अभाव होने से आत्मा निर्द्वन्द्व है।'

आत्मा शुद्ध चैतन्य एकरूप है, उसमें बाह्य अन्य चेतन और जड़ पदार्थों का तो अभाव है ही; साथ ही दया-दानादि विकल्पों का भी अभाव है। दूसरे जीव, अजीव पदार्थ, पुण्य, पाप, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष तत्त्व भी शुद्ध ध्रुवस्वभाव में नहीं हैं। आत्मा के साथ यदि इनमें से कोई भी तत्त्व मान लिया जाय तो द्वैतपना उत्पन्न होता है। मोक्ष भी एकसमय की पर्याय है, परम शुद्धभाव में उसका भी अभाव है। ऐसे शुद्धभाव का अवलम्बन लेने पर अनेकपना अथवा द्वैतपना उत्पन्न नहीं होता और आत्मा का अनुभव होता है। जीव-अजीवादि सात तत्त्व के लक्ष्य से विकल्प

अवश्य उठते हैं और पर्याय में द्वैतपना अथवा अनेकपना भी अवश्य होता है।

कोई कहे कि आत्मा सर्वथा अद्वैत ही है और अन्य वस्तुयें हैं ही नहीं तथा पर्याय भी नहीं है तो यह बात सर्वथा खोटी है। दूसरे जीव तथा अजीव पदार्थ हैं और अपने में विकल्प उठने पर रागवाली, आस्रव-बन्धवाली पर्याय होती है और शुद्धता होने पर संवर, निर्जरा, मोक्ष की पर्याय होती है – इसप्रकार पर्याय भी है; परन्तु वह व्यवहारनय का विषय है। आत्मा को द्रव्यदृष्टि कराने के लिये, अभेद अद्वैत आत्मा की श्रद्धा कराने के लिए ऐसा कहा कि शुद्ध आत्मा में अन्य पदार्थ तथा मोक्ष की पर्याय का भी अभाव है, आत्मा द्वैतरहित है अर्थात् निर्द्वन्द्व है; ऐसा निर्द्वन्द्व आत्मा सम्यग्दर्शन का विषय है। उसको लक्ष्य में लेकर स्थिर होने से द्वैत का अभाव होता है और आत्मा एकरूप अपना अनुभव करता है।

(३) प्रशस्त-अप्रशस्त मोह-राग-द्वेष एकसमय की अवस्था में ही हैं; किन्तु शुद्ध ध्रुवस्वभाव में उनका अभाव है; इसलिये आत्मा निर्मम है।

'प्रशस्त-अप्रशस्त समस्त मोह-राग-द्वेष का अभाव होने से आत्मा निर्मम है (ममता रहित है)।'

देव-शास्त्र-गुरु के प्रति लगन होना प्रशस्त मोह और राग है। भगवान के प्रति, सम्मेदशिखरजी, गिरनारजी आदि तीर्थों के प्रति राग होना प्रशस्त राग है और सच्चे देव-शास्त्र-गुरु के विरुद्ध कोई बोलता हो, उसके प्रति अल्प द्वेष होना प्रशस्त द्वेष है। प्रशस्त मोह-राग-द्वेष पर के कारण नहीं होता अपितु; अपने कारण ही एकसमय की पर्याय में होता है और वह पुण्य बंध का कारण है; धर्म का कारण नहीं है।

स्त्री, पुत्र, कुटुम्बादि के प्रति झुकाव होना अप्रशस्त मोह और राग है और अपने कुटुम्ब से विरुद्ध हो उसके प्रति द्वेष होना वह अप्रशस्त द्वेष है। वह मोह-राग-द्वेष परजीवों के कारण से नहीं होता; अपितुअपने कारण से ही एकसमय की पर्याय में होता है।

पुनः मोह और द्वेष साथ हो अथवा मोह और राग साथ-साथ हो; किन्तु कभी भी तीनों एकसाथ नहीं होते। इसी भाँति प्रशस्त के समय अप्रशस्त और अप्रशस्त के समय प्रशस्त नहीं होता। जब जिसप्रकार का वर्तता हो उसकी रुचि छुड़ाने के लिए ऐसा कहा कि शुद्ध आत्मा में प्रशस्त-अप्रशस्त समस्त मोह-राग-द्वेष का अभाव है। देव-शास्त्र-गुरु के कारण राग हो अथवा कुटुम्ब के कारण राग हो – ऐसा वस्तुस्वरूप तो है ही नहीं; परन्तु अपने कारण से होने वाले ममता के परिणाम एकसमय जितने ही हैं; फिर भी शुद्धस्वभाव तो ममता रहित ही है।

निर्मम आत्मा के आश्रय से प्रगट होने वाली स्व-परप्रकाशक ज्ञान की निर्मल पर्याय जैनशासन है। **(क्रमशः)**

ज्ञान गोष्ठी

सायंकालीन तत्त्वचर्चा के समय विभिन्न मुमुक्षुओं द्वारा पूज्य स्वामीजी से पूछे गये प्रश्न और स्वामीजी द्वारा दिये गये उत्तर

प्रश्न : सम्यग्दर्शन नहीं होता, इसमें पुरुषार्थ की निर्बलता को कारण मानें ?

उत्तर : नहीं; विपरीतता के कारण तो सम्यग्दर्शन अटकता है और पुरुषार्थ की निर्बलता के कारण चारित्र अटकता है – ऐसा न मानकर सम्यक्त्व के न होने में पुरुषार्थ की निर्बलता को कारण मानना, यह तो पहाड़ जैसे महादोष को राईसमान अल्प बनाने जैसा है। जो ऐसा मानता है कि सम्यग्दर्शन अटकने में पुरुषार्थ की निर्बलता कारण है, वह इस पहाड़ जैसी विपरीत मान्यता के दोष को दूर नहीं कर सकता।

प्रश्न : समयसार में शुद्धनय का अवलम्बन लेने के लिये कहा है, परन्तु शुद्धनय तो ज्ञान का अंश है, पर्याय है, क्या उस अंश के – पर्याय के अवलम्बन से सम्यग्दर्शन होगा ?

उत्तर : शुद्धनय का अवलम्बन वास्तव में कब हुआ कहा जाय ? अकेले अंश का भेद करके उसके ही अवलम्बन में जो अटका है, उसके तो शुद्धनय है ही नहीं। ज्ञान के अंश को अन्तर में लगाकर जिसने त्रिकाली द्रव्य के साथ अभेदता की है, उसको ही शुद्धनय होता है। ऐसी अभेद दृष्टि की, तब शुद्धनय का अवलम्बन लिया – ऐसा कहा जाता है। 'शुद्धनय का अवलम्बन' – ऐसा कहने पर उसमें भी द्रव्य-पर्याय की अभेदता की ही बात आती है; परिणति अन्तर्मुख होकर द्रव्य में अभेद होने पर जो अनुभव हुआ – उसका नाम शुद्धनय का अवलम्बन है; उसमें द्रव्य-पर्याय के भेद का अवलम्बन नहीं है। यद्यपि शुद्धन ज्ञान का ही अंश है; पर्याय है; परन्तु वह शुद्धनय अन्तर के भूतार्थ स्वभाव में अभेद हो गया है अर्थात् वहाँ नय और नय का विषय जुदा नहीं रहा। जब ज्ञानपर्याय अन्तर में झुककर शुद्धद्रव्य के साथ अभेद हुई, तब ही शुद्धनय निर्विकल्प है। ऐसा शुद्धनय कतकफल के स्थान पर है। जैसे – मैले पानी में कतकफल अर्थात् निर्मली नामक औषधि डालने पर पानी निर्मल हो जाता है, वैसे ही कर्म से भिन्न शुद्धात्मा का अनुभव शुद्धनय से होता है। शुद्धनय से भूतार्थ स्वभाव का अनुभव होने पर आत्मा और कर्म का भेदज्ञान हो जाता है।

प्रश्न : कितना अभ्यास करें कि सम्यग्दर्शन प्राप्त हो सके ?

उत्तर : ग्यारह अंगों का ज्ञान हो जाये - इतनी राग की मन्दता अभव्य को होती है। ग्यारह अंग के ज्ञान का क्षयोपशम बगैर पढे ही हो जाता है, विभंग ज्ञान भी हो जाता है और सात द्वीप समुद्र को प्रत्यक्ष देखता है, तो भी यह सब ज्ञान होना सम्यग्दर्शन का कारण नहीं है।

प्रश्न : ग्यारह अंग वाले को भी सम्यग्दर्शन नहीं होता, तब आत्मा की रुचि बगैर इतना सारा ज्ञान कैसे हो जाता है ?

उत्तर : ज्ञान का क्षयोपशम होना - यह तो मंद कषाय का कार्य है, आत्मा की रुचि का कार्य नहीं। जिसको आत्मा की यथार्थ रुचि होती है, उसका ज्ञान अल्प हो तो भी रुचि के बल पर सम्यग्दर्शन होता है। सम्यग्दर्शन के लिये ज्ञान के क्षयोपशम की आवश्यकता नहीं; लेकिन आत्मरुचि की ही आवश्यकता है।

प्रश्न : इतने अधिक शास्त्र हैं, उनमें सम्यग्दर्शन के लिये विशेष निमित्तभूत कौनसा शास्त्र है ?

उत्तर : स्वयं जब स्वभाव को देखने में उग्र पुरुषार्थ करता है, तब उस समय जो शास्त्र निमित्त हो, उसको निमित्त कहा जाता है। द्रव्यानुयोग हो, करणानुयोग हो, चरणानुयोग शास्त्र हो, वह भी निमित्त कहा जाता है, प्रथमानुयोग को भी बोधिसमाधि का निमित्त कहा है।

प्रश्न : अपनी आत्मा को जानने से ही सम्यग्दर्शन होता है तो फिर अरहन्त के द्रव्य-गुण पर्याय को जानने की क्या आवश्यकता है ?

उत्तर : अरहन्त के द्रव्य-गुण-पर्याय को जानना आवश्यक है। अरहन्त की पूर्ण पर्याय को जानने पर ही, वैसी पर्याय अपने में प्रगट नहीं हुई है, इसलिये उसे स्वद्रव्य की तरफ लक्षित करने पर दृष्टि द्रव्य के ऊपर जाती है और सर्वज्ञ-स्वभाव की प्रतीति होती है। इसलिये अरहन्त के द्रव्य-गुण-पर्याय को जानने पर सम्यग्दर्शन हुआ - ऐसा कहा जाता है।

मुक्त विद्यापीठ के छात्र ध्यान दें !

श्री टोडरमल जैन मुक्त विद्यापीठ जयपुर के द्वितीय सेमेस्टर दिसम्बर 2011 की परीक्षायें सम्पन्न हो चुकी हैं। संबंधित जिन अभ्यर्थियों ने अभी तक उत्तर पुस्तिकायें परीक्षा बोर्ड कार्यालय जयपुर को नहीं भेजी हों, कृपया वे तत्काल भेजें, ताकि परीक्षाफल जैसा महत्वपूर्ण कार्य प्रभावित न होने पावे।

- ओ.पी.आचार्य (प्रबन्धक-परीक्षा विभाग)

समाचार दर्शन -

अजमेर में पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव संपन्न

अजमेर (राज.) : यहाँ वैशाली नगर में श्री वीतराग-विज्ञान स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, अजमेर द्वारा नवीन जिनमंदिर ऋषभायतन अध्यात्मधाम में दिनांक 30 जनवरी से 5 फरवरी 2012 तक श्री 1008 आदिनाथ दिगम्बर जिनबिम्ब पञ्चकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव का आयोजन अनेक विशिष्ट कार्यक्रमों सहित सानन्द सम्पन्न हुआ।

महोत्सव में अन्तरराष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त तार्किक विद्वान **डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल** के प्रतिदिन ग्रन्थाधिराज समयसार पर प्रवचनों का लाभ मिला। जन्मकल्याणक, दीक्षाकल्याणक एवं आहारदान पर हुये आपके प्रवचन भी सराहनीय रहे। आपके अतिरिक्त डॉ. उत्तमचंदजी सिवनी, पण्डित अभयकुमारजी शास्त्री देवलाली, पण्डित अनिलजी शास्त्री भिण्ड, पण्डित राजकुमारजी शास्त्री बांसवाड़ा, पण्डित संजीवकुमारजी गोधा जयपुर, पण्डित प्रकाशजी छाबड़ा, पण्डित कमलचंदजी पिड़ावा, पण्डित श्रेणिकजी जबलपुर, डॉ. शरदजी जैन, विदुषी राजकुमारी बहिन दिल्ली इत्यादि अनेक विद्वानों के भी प्रवचनों एवं सानिध्य का लाभ उपस्थित जनसमुदाय को मिला।

पञ्चकल्याणक की सम्पूर्ण प्रतिष्ठा-विधि प्रतिष्ठाचार्य ब्र. जतीशचंदजी शास्त्री दिल्ली ने सह-प्रतिष्ठाचार्य पण्डित सुनीलजी धवल भोपाल, पण्डित कांतिकुमारजी इन्दौर, पण्डित सुबोधजी शास्त्री शाहगढ, ब्र.सुकुमालजी झांझरी, पण्डित अश्विनजी नानावटी बांसवाड़ा, पण्डित रमेशजी ज्ञायक इन्दौर, पण्डित सचिनजी शास्त्री, पण्डित अंकितजी शास्त्री, पण्डित वीरेन्द्रजी शास्त्री ध्रुवधाम आदि के सहयोग से शुद्ध तेरापंथ आम्नायानुसार सम्पन्न कराई गई।

बालक ऋषभकुमार के माता-पिता बनने का सौभाग्य श्री प्रकाशचंद-शशिप्रभा लुहाड़िया इन्दौर को प्राप्त हुआ। महोत्सव के सौधर्म इन्द्र-इन्द्राणी श्री धर्मचन्द सरोज गदिया अजमेर थे। कुबेर इन्द्र-इन्द्राणी श्री कमल-शशिकला बड़जात्या मुम्बई थे। महोत्सव की संपूर्ण विधि के यज्ञनायक श्री संजय-अनिता सोनी अजमेर थे।

इस अवसर पर भगवान आदिनाथ की 61 इंची पद्मासन प्रतिमा, भगवान भरत व बाहुबली की 61-61 इंची खड्गासन प्रतिमा एवं मानस्तम्भ की प्राण-प्रतिष्ठा की गई।

महोत्सव के ध्वजारोहणकर्त्ता श्री निहालचंदजी घेवरचंदजी जैन जयपुर थे। प्रतिष्ठा मण्डप का उद्घाटन श्री प्रेमचंदजी जैन महावीर टेन्ट हाउस अजमेर ने किया।

महोत्सव के विशेष आकर्षण विद्वानों द्वारा मंगल प्रवचन, इन्द्रसभा, राजसभा, अष्टदेवियों व माता की चर्चा, मंगल गीत नृत्य, सती अंजना व नल दम्यन्ति का नाटक, 1008 कलशों द्वारा प्रथम बार वेदी शुद्धि, मानवरहित विमान द्वारा पाण्डुकशिला पर पुष्पवृष्टि, विशाल पालना झूलन आदि अनेकानेक ऐतिहासिक व धार्मिक कार्यक्रम रहे। प्रतिदिन लगभग 3-4 हजार साधर्मियों ने धर्मलाभ लिया।

पंचकल्याणक प्रतिष्ठा कमेटी के **अध्यक्ष** श्री पूनमचंदजी लुहाड़िया, **कार्याध्यक्ष** श्री

(शेष पृष्ठ 29 पर...)

पञ्चकल्याणक महोत्सव संपन्न

अकलूज (महा.) : यहाँ वीतराग स्वाध्याय मण्डल अकलूज द्वारा दिनांक 26 जनवरी से 2 फरवरी 2012 तक श्री आदिनाथ दिगम्बर जिनबिम्ब पञ्चकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव का आयोजन अनेक विशिष्ट कार्यक्रमों सहित सानन्द सम्पन्न हुआ। चित्ताकर्षक कलात्मक लाल पाषाण में निर्मित श्री आदिनाथ दि. जिनमंदिर एवं कीर्तिस्तम्भ की रचना पूरे क्षेत्र में अद्वितीय है।

महोत्सव में पण्डित शान्तिकुमार पाटील, ब्र. जीतूभाई, ब्र. गजाबेन, ब्र. सुजाता ताई, ब्र. मंजु ताई, ब्र. वीतराग, पण्डित विक्रान्त शास्त्री, प्रो.सुरेश कोटडिया, पण्डित राजकुमार आलन्दकर, पण्डित शीतल दोशी, पण्डित सचिन संचेती इत्यादि विद्वानों के प्रवचनों एवं सानिध्य का लाभ उपस्थित जनसमुदाय को मिला।

पञ्चकल्याणक की सम्पूर्ण प्रतिष्ठा-विधि पण्डित धर्मेन्द्रकुमार शास्त्री कोटा, ब्र. महेन्द्रकुमार शास्त्री अमायन, डॉ. नेमिनाथ शास्त्री बाहुबली ने पण्डित मनोजकुमार मुजफ्फरनगर, पण्डित अनिल शास्त्री 'धवल' एवं आचार्य धरसेन सिद्धान्त महाविद्यालय कोटा के छात्रों के सहयोग से तेरापंथ आम्नायानुसार सम्पन्न कराई।

पण्डित शान्तिकुमारजी पाटील जयपुर द्वारा इन्द्रसभा-राजसभा आदि का मराठी भाषा में किया गया संचालन विशेष रूप से सराहा गया। पण्डित ऋषभकुमारजी शास्त्री छिन्दवाड़ा के संयोजन में सीमंधर संगीत सरिता द्वारा प्रासंगिक भक्ति गीतों की संगीतमय प्रस्तुति की धूम रही।

बालक ऋषभकुमार के माता-पिता बनने का सौभाग्य डॉ. सतीश-अजिता शाह इण्डि को प्राप्त हुआ। सौधर्म इन्द्र-इन्द्राणी श्री सुनिल-अमृता गांधी पुणे थे। कुबेर इन्द्र-इन्द्राणी श्री सुरेश-साधना दोशी नातेपुते एवं यज्ञनायक श्री संजय-नयना दोशी अकलूज थे।

इस अवसर पर भगवान आदिनाथ की 51 इंची श्वेत पाषाण की पद्मासन प्रतिमा, भगवान आदिनाथ एवं भगवान महावीर की धातु की 9-9 इंची प्रतिमाओं की प्राण-प्रतिष्ठा की गई।

महोत्सव के ध्वजारोहणकर्त्ता श्री सुनील हीराचंदजी दोशी एस.एच. दोशी परिवार, इन्दापुर-नातेपुते-अकलूज थे। प्रतिष्ठा मण्डप का उद्घाटन श्री शरद हीराचंदजी दोशी परिवार खंडाला-बावडा ने किया।

महोत्सव के विशेष आकर्षण विद्वानों द्वारा मंगल प्रवचन, इन्द्रसभा, राजसभा, अष्टदेवियों व माता की चर्चा, मंगल गीत, नृत्य, अकलूज महिला मण्डल का जम्बू से जम्बूस्वामी का नाटक, विशाल पालना झूलन आदि अनेकानेक ऐतिहासिक व धार्मिक कार्यक्रम रहे। प्रतिदिन लगभग 4 हजार साधर्मियों ने धर्मलाभ लिया।

पंचकल्याणक प्रतिष्ठा कमेटी के **अध्यक्ष** श्री रमेशसूरचंदजी दोशी, **कोषाध्यक्ष** श्री वीरकुमार मलूकचंदजी दोशी, **महामंत्री** श्री जवाहरलाल पवनलालजी दोशी, **निर्देशक** बा.ब्र. जीतूभाई, **प्रमुख संयोजक** बा.ब्र. वीतराग दोशी थे। प्रतिष्ठा कमेटी ने समस्त विद्वानों एवं अतिथियों का सम्मान एवं आभार व्यक्त किया।

पण्डित शान्तिकुमारजी पाटील ने जयपुर पंचकल्याणक का हार्दिक आमंत्रण दिया। सभी लोगों ने पंचकल्याणक में आने की भावना व्यक्त की।

संपूर्ण महोत्सव में पूजन, प्रवचन, भक्ति एवं सांस्कृतिक कार्यक्रमों की धूम मची रही। जन्म कल्याणक के अवसर पर बहुत धमधाम से जुलूस निकाला गया।

इस अवसर पर जयपुर, कारंजा एवं सोलापुर के प्रकाशनों का लगभग एक लाख रुपये का सत्साहित्य विक्रय हुआ। अन्तिम दिन इन्द्र-इन्द्राणी व राजा-रानी आदि पात्रों को जयपुर का सत्साहित्य श्री शान्तिनाथ मल्लिनाथ सोनाज परिवार द्वारा भेंट स्वरूप दिया गया। कमेटी एवं पात्रों द्वारा टोडरमल स्मारक को साहित्य प्रकाशन हेतु ढाईलाख रुपये की दानराशि प्राप्त हुई। ●

परीक्षा सामग्री शीघ्र भेजें

श्री वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड, ए-4, बापूनगर, जयपुर - 302015 (राज.) की शीतकालीन परीक्षा 27, 28 व 29 जनवरी 2012 को सम्पन्न हो चुकी है।

जिन परीक्षा केन्द्रों ने परीक्षा सामग्री अभी तक नहीं भेजी हो, कृपया यथाशीघ्र जयपुर कार्यालय को भिजवा देवें, ताकि परीक्षा परिणाम व प्रमाण-पत्र का कार्य समय पर सम्पन्न हो सके। **- ओ.पी.आचार्य (प्रबंधक-परीक्षा विभाग)**

(पृष्ठ 27 का शेष...)

नरेशजी लुहाड़िया, **महामंत्री** श्री रजनीभाई दोशी हिम्मतनगर, **स्वागताध्यक्ष** श्री त्रिलोकचंदजी सोनी, श्री विनयचंदजी सोगानी, श्री हीराचंदजी बोहरा व श्री माणकचंदजी गदिया, **निर्देशक** श्री विजय बड़जात्या व श्री पदमचंदजी पहाड़िया, **मंत्री** श्री मनोजजी कासलीवाल, **कोषाध्यक्ष** श्री राजेन्द्रजी गदिया, **प्रमुख संयोजक** श्री प्रकाशचंदजी पाण्ड्या, **सहसंयोजक** श्री प्रवीणजी गदिया, **सामाजिक व राजनैतिक कार्यकर्त्ता** श्री पुखराजजी पहाड़िया एवं **प्रचार मंत्री** श्री अकलेशजी जैन थे।

पञ्चकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव के पावन अवसर पर अजमेर दि. जैन समाज द्वारा श्री पूनमंचदजी लुहाड़िया अजमेर को **'समाजरत्न'**, एवं जैनवीरधन की ओर से **'जिनधर्मप्रभावक'** की उपाधि प्रदान की गई। तत्पश्चात् प्रतिष्ठा कमेटी ने समस्त विद्वानों एवं अतिथियों का सम्मान एवं आभार व्यक्त किया।

महोत्सव में डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल के साथ-साथ अनेक विद्वानों ने जयपुर पंचकल्याणक का हार्दिक आमंत्रण दिया। सभी लोगों ने पंचकल्याणक में आने की भावना व्यक्त की।

संपूर्ण महोत्सव में पूजन, प्रवचन, भक्ति एवं सांस्कृतिक कार्यक्रमों की धूम मची रही। जन्म कल्याणक के अवसर पर बहुत धूमधाम से जुलूस निकाला गया। इन्द्रसभा व राजसभा का संचालन पण्डित अभयजी शास्त्री देवलाली ने बहुत सुन्दर ढंग से किया। **- अश्विन नानावटी**

पंचकल्याणक आमंत्रण पत्रिका का भव्य विमोचन

जयपुर (राज.) : यहाँ श्री टोडरमल स्मारक भवन में होने वाले पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव की तैयारियाँ बहुत जोर-शोर से चल रही हैं। इसी क्रम में यहाँ दिनांक 29 जनवरी को पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव की आमंत्रण पत्रिका का भव्य विमोचन समारोह संपन्न हुआ, जिसमें पत्रिका का विमोचन जयपुर की महापौर श्रीमती ज्योति खण्डेलवाल ने किया।

इस अवसर पर प्रात: तत्त्ववेत्ता डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल के प्रवचन का लाभ मिला, जिसमें उन्होंने आदर्श पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव की रूपरेखा प्रस्तुत की। तत्पश्चात् गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के मांगलिक के साथ पत्रिका विमोचन का कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ।

कार्यक्रम की अध्यक्षता श्री सुशीलकुमारजी गोदिका ने की। मुख्य अतिथि के रूप में श्रीमती ज्योति खण्डेलवाल (महापौर-जयपुर) एवं विशिष्ट अतिथि के रूप में श्री श्यामसिंहजी मान्डा (अध्यक्ष-भवानी निकेतन स्कूल), श्री अजितजी जैन बड़ौदा, श्री कुशलजी वैद अमेरिका, श्री स्वप्निलजी जैन मंगलायतन, श्री महेन्द्रकुमारजी पाटनी (कार्याध्यक्ष-महोत्सव समिति), श्री शान्तिलालजी जैन, श्री नरेशकुमारजी सेठी, श्री राजकुमारजी काला एडवोकेट, श्री प्रमोदजी जैन 'जयपुर प्रिंटर्स', श्री शांतिलालजी गंगवाल, श्री निहालचंदजी जैन, श्री ज्ञानचंदजी झांझरी, श्री अजितजी तोतुका, श्री शांतिलालजी चौधरी आदि महानुभाव मंचासीन थे। विद्वानों में तत्त्ववेत्ता डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल, पण्डित रतनचंदजी भारिल्ल जयपुर, ब्र. अभिनन्दनकुमारजी शास्त्री खनियांधाना, ब्र. यशपालजी जैन जयपुर, पण्डित पूनमचंदजी छाबड़ा इन्दौर, पण्डित संजीवकुमारजी गोधा आदि उपस्थित थे।

कार्यक्रम के प्रारंभ में पंचकल्याणक का परिचय श्री शुद्धात्मप्रकाशजी भारिल्ल ने दिया। तत्पश्चात् स्वागत भाषण में श्री अजितजी जैन बड़ौदा ने कहा कि इस पंचकल्याणक में लगभग 1000 विद्वानों के साथ लगभग 20 हजार साधर्मियों के पधारने की संभावना है।

अपने उद्बोधन में जयपुर महापौर ने कहा कि जयपुर में होने वाला पंचकल्याणक महोत्सव संपूर्ण गरिमा और भव्यता के साथ संपन्न होगा। यह महोत्सव विश्व पटल पर जयपुर को एक और ऐतिहासिक आयोजन के लिये याद रखेगा। अन्त में श्री महेन्द्रकुमारजी पाटनी जयपुर ने कहा कि इस महोत्सव को सफल बनाने हेतु जयपुर की संपूर्ण जैन समाज को आगे आना चाहिये।

पत्रिका विमोचन समारोह के पूर्व प्रात: 7 बजे से त्रिमूर्ति जिनालय पर श्री आदिनाथ पंचकल्याणक विधान का आयोजन किया गया। विधान के संपूर्ण कार्य पण्डित विरागजी शास्त्री देवलाली एवं पण्डित सोनूजी शास्त्री जयपुर के निर्देशन में संपन्न हुये।

संपूर्ण कार्यक्रम में लगभग 600 साधर्मियों ने बहुत उत्साह के साथ भाग लिया एवं पंचकल्याणक में आने हेतु अपना उत्साह प्रदर्शन भी किया।

कार्यक्रम का मंगलाचरण श्री गौरव जैन जयपुर एवं संचालन श्री परमात्मप्रकाशजी भारिल्ल मुम्बई ने किया ●

स्वर्ण कलश एवं ध्वजारोहण संपन्न

खतौली (म.प्र.) : यहाँ श्री 1008 चन्द्रप्रभ दिगम्बर जैन मंदिर पीसनोपाड़ा के शिखर पर दिनांक 7 से 9 जनवरी 2012 तक स्वर्ण कलश एवं ध्वजादंड स्थापना महोत्सव एवं विश्व शांति महायज्ञ का आयोजन किया गया।

इस अवसर पर पण्डित ज्ञानचंदजी विदिशा, पण्डित मांगीलालजी कोलारस, पण्डित अनिलकुमारजी भिण्ड, डॉ. नेमचंदजी खतौली, डॉ. मनीषजी शास्त्री खतौली आदि विद्वानों के प्रवचनों का लाभ मिला।

दिनांक 7 जनवरी को प्रात: 9 बजे श्री 1008 चन्द्रप्रभ दिगम्बर जैन मंदिर से श्रीजी की विशाल शोभा यात्रा निकाली गई। रात्रि में वीतराग-विज्ञान पाठशाला खतौली द्वारा तत्त्वज्ञान से ओतप्रोत सांस्कृतिक कार्यक्रम का किया गया। कार्यक्रम का संचालन पाठशाला संचालिका श्रीमती आभा जैन एवं श्री राजकुमारजी जैन द्वारा किया गया।

दिनांक 8 जनवरी को प्रात: यागमंडल विधान यज्ञनायक, सौधर्म, कुबेर, मुख्य कलशारोहणकर्त्ता आदि 24 इन्द्रों के साथ किया गया। दोपहर में भव्य घटयात्रा निकाली गई एवं रात्रि में इन्द्र सभा द्वारा आध्यात्मिक चर्चा का मंचन किया गया।

दिनांक 9 जनवरी को प्रात: श्रीजी की शोभायात्रा निकाली गई, जिसमें भजनमंडली आकर्षण का केन्द्र रही। तत्पश्चात शिखर पर स्वर्ण कलश एवं ध्वजारोहण किया गया। रात्रि में भजन संध्या का आयोजन किया गया।

मुख्य कलशारोहण श्री पंकजजी जैन खतौली परिवार ने एवं अन्य दिशाओं का कलशारोहण क्रमश: श्री रमेशचंदजी जैन अम्बाला, श्री पुष्पेन्द्रजी जैन परिवार ननौता व श्री दीपकजी जैन परिवार खतौली द्वारा किया गया। ध्वजादंड आरोहण श्री मनोजकुमार जैन दिनेशकुमार जैन दिल्ली परिवार ने किया। समारोह में यज्ञनायक श्री पंकजजी जैन दिल्ली, सौधर्म इन्द्र श्री शशांकजी जैन खतौली एवं कुबेर श्री मनोजजी जैन दिल्ली को बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

विधि-विधान के संपूर्ण कार्य ब्र.जतीशचंदजी शास्त्री दिल्ली के निर्देशन में पण्डित सुनीलजी शास्त्री 'धवल' व पण्डित कांतिकुमारजी द्वारा संपन्न कराये गये।

संपूर्ण कार्यक्रम पण्डित सोनूजी शास्त्री जयपुर एवं पण्डित कल्पेन्द्रजी के कुशल निर्देशन में संपन्न हुये। कार्यक्रम में संपूर्ण जैनसमाज का सराहनीय सहयोग रहा।

कार्यक्रम में जयपुर में होने वाले पंचकल्याणक का आमंत्रण भी दिया गया, जिसमें अनेक लोगों ने आने का निश्चय किया। **– जिनेन्द्र कुमार जैन**

पञ्चकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव सानंद संपन्न

राघौगढ (म.प्र.) : यहाँ श्री आदिनाथ कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन परमागम मन्दिर ट्रस्ट राघौगढ द्वारा आयोजित श्री 1008 आदिनाथ दिगम्बर जिनबिम्ब पञ्चकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव का आयोजन दिनांक 19 से 25 जनवरी 2012 तक अनेक विशिष्ट कार्यक्रमों सहित सानन्द सम्पन्न हुआ।

महोत्सव में अन्तरराष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त तार्किक विद्वान **डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल** के प्रतिदिन समयसार के निर्जरा अधिकार पर प्रवचनों का लाभ मिला। आहारदान एवं दीक्षाकल्याणक पर हुआ आपका प्रवचन भी सराहनीय रहा। आपके अतिरिक्त पण्डित विमलदादा झांझरी उज्जैन, पण्डित अभयकुमारजी शास्त्री देवलाली, पण्डित अनिलजी शास्त्री भिण्ड, पण्डित सुशीलजी इन्दौर, पण्डित रूपचंदजी बंडा, पण्डित गुलाबचंदजी बीना इत्यादि अनेक विद्वानों के भी प्रवचनों का लाभ उपस्थित जनसमुदाय को मिला।

पञ्चकल्याणक की सम्पूर्ण प्रतिष्ठा-विधि प्रतिष्ठाचार्य ब्र. जतीशचंदजी शास्त्री दिल्ली ने पण्डित सुनीलजी धवल भोपाल, पण्डित कांतिकुमारजी इन्दौर, पण्डित अशोकजी शास्त्री राघौगढ आदि के सहयोग से शुद्ध तेरापंथ आम्नायानुसार सम्पन्न कराई गई।

पञ्चकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव के तीसरे दिन तीर्थङ्कर के गर्भ कल्याणक के अवसर पर देवों द्वारा पुष्पवृष्टि का दृश्य और तीर्थङ्कर की माता को दिखलाये जाने वाले सोलह स्वप्न का प्रदर्शन सभी उपस्थित दर्शकों द्वारा सराहा गया।

बालक ऋषभकुमार के माता-पिता बनने का सौभाग्य श्री अशोककुमार-विजयकुमारी गुना को प्राप्त हुआ। महोत्सव के सौधर्म इन्द्र-इन्द्राणी श्री सुधीरकुमार-सोनिया जैन भोपाल थे।

इस अवसर पर भगवान आदिनाथ की प्रतिमा के विराजमानकर्त्ता श्री विपिनकुमारजी दुबई, भगवान शांतिनाथ की प्रतिमा के विराजमानकर्त्ता श्री सुधीरजी जैन भोपाल एवं सीमंधर भगवान की प्रतिमा के विराजमानकर्त्ता श्री मुकेशजी जैन ढाईद्वीप इन्दौर थे। नेमिनाथ भगवान की खड़गासन प्रतिमा के विराजमानकर्त्ता श्री केवलचंद-दिनेशकुमार-डॉ.वीरेन्द्र रावत परिवार राघौगढ और श्री पार्श्वनाथ भगवान की खड़गासन प्रतिमा के विराजमानकर्त्ता श्री विमलचंद एन्ड सन्स राघौगढ थे।

महोत्सव के ध्वजारोहणकर्त्ता श्री राजेन्द्रकुमारजी अशोकनगर थे। प्रतिष्ठा मण्डप का उद्घाटन श्री रमेशचंद चौधरी (अध्यक्ष-जैन समाज अशोकनगर) ने एवं प्रतिष्ठा मंच का उद्घाटन श्री कैलाशचंदजी शिखरचंदजी आरोन ने किया। राजा श्रेयांस श्री बाबूलाल चक्रेशकुमार परिवार अशोकनगर थे।

पंचकल्याणक प्रतिष्ठा कमेटी के अध्यक्ष श्री शिवरतनजी जैन, कार्याध्यक्ष डॉ.अजितजी रावत, महामंत्री श्री प्रेमचंदजी भारिल्ल, कोषाध्यक्ष श्री विमलचंदजी जैन, स्वागताध्यक्ष श्री विजयकुमारजी जैन, उपाध्यक्ष श्री शीतलचंदजी कोठारी, श्री दिनेशजी रावत, श्री अशोकजी भारिल्ल व श्री राजेन्द्रजी (मेडिकल) थे।

दिनांक १९ जनवरी को कु. वीणा अजमेरा का १०८ कलशों के साथ नृत्य एवं दिनांक २३ जनवरी को राघौगढ व उज्जैन के कलाकारों द्वारा 'चैतन्य-चमत्कार' नृत्य नाटिका का मंचन विशेष आकर्षण का केन्द्र रहा।

दिनांक २२ जनवरी को जन्म कल्याणक के अवसर पर ८ हाथी, ५ बग्गी, दो घोड़े और ११ बैण्ड सहित जुलुस निकला।

पञ्चकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव के पावन अवसर पर दिनांक २४ जनवरी को महोत्सव समिति ने समस्त विद्वानों, अतिथियों एवं कार्यकर्ताओं का सम्मान एवं आभार व्यक्त किया। संचालन श्री अशोकजी मांगुलकर एवं आभार प्रदर्शन श्री प्रेमचंदजी भारिल्ल ने व्यक्त किया।

संपूर्ण महोत्सव में पूजन, प्रवचन, भक्ति एवं सांस्कृतिक कार्यक्रमों की धूम मची रही। ●

जिनमंदिर का वार्षिकोत्सव पूरे उत्साह सहित संपन्न

जबलपुर (म.प्र.) : यहाँ बड़ा फहारा स्थित श्री महावीरस्वामी दिगम्बर जिनमंदिर की बारहवीं वर्षगांठ के अवसर पर दिनांक 10 से 17 जनवरी तक कल्पद्रुम मण्डल विधान बहुत उत्साह के साथ संपन्न हुआ।

इस अवसर पर पण्डित संजयजी शास्त्री मंगलायतन द्वारा प्रात: विधान की जयमाला पर एवं रात्रि को द्रव्यदृष्टि प्रकाश के बोलों पर विशेष व्याख्यान हुये। व्याख्यान के पश्चात् रोचक और गंभीर शैली में पौराणिक कथायें, जैनत्व का इतिहास, शंका-समाधान जैसे तात्त्विक कार्यक्रम हुये। इसके अतिरिक्त पण्डित सुधीरजी शास्त्री के एक व्याख्यान का भी लाभ मिला।

विधान के मुख्य आमंत्रणकर्त्ता श्री मुन्नालालजी राजेश जैन परिवार थे।

विधि-विधान के संपूर्ण कार्यक्रम पण्डित संजयजी शास्त्री के निर्देशन में श्री मनोजजी, श्री श्रेणिकजी, पण्डित विरागजी शास्त्री द्वारा संपन्न कराये गये।

कार्यक्रम में 1 से 8 मई तक बाल संस्कार शिविर के आयोजन की घोषणा भी की गई। आयोजन में मंगलायतन के महासचिव श्री स्वप्निलजी जैन की विशेष उपस्थिति रही। ●

ज्ञानगोष्ठी संपन्न

देवलाली (महा.) : यहाँ कहान नगर में मोना (मुमुक्षु ऑफ नॉर्थ अमेरिका) के तत्त्वावधान में दिनांक 10 से 14 फरवरी तक एक ज्ञानगोष्ठी का आयोजन किया गया। गोष्ठी का विषय **दृष्टि का विषय एवं भेदज्ञान का प्रयोग** रखा गया।

इस अवसर पर वक्ताओं के रूप में ब्र. हेमचंदजी 'हेम' देवलाली, पण्डित भरतभाई सेठ राजकोट, पण्डित अभयकुमारजी शास्त्री देवलाली, डॉ. राकेशकुमारजी शास्त्री नागपुर, पण्डित चेतनभाई मेहता राजकोट, पण्डित रमणीकभाई सावला देवलाली आदि विद्वानों के वक्तव्य का लाभ मिला। गोष्ठी प्रारंभ होने के पूर्व गुरुदेवश्री कानजीस्वामी का समयसार की 11वीं गाथा पर सी.डी. प्रवचन हुआ।

इस अवसर पर अमेरिका, दुबई, कनाडा, मुम्बई, इन्दौर आदि स्थानों से पधारकर साधर्मियों ने तत्त्वचर्चा का लाभ लिया। उपस्थित साधर्मियों ने इस प्रयोग की सराहना करते हुए ऐसे आयोजन को बारंबार आयोजित करने का सुझाव दिया।

गोष्ठी के संयोजक श्री रजनीकान्त गोसालिया थे। गोष्ठी का निर्देशन पण्डित अभयजी शास्त्री ने किया। ●

मुकुन्दभाई खारा नहीं रहे

गुरुदेवश्री कानजीस्वामी स्मारक ट्रस्ट देवलाली के अध्यक्ष **मुम्बई निवासी श्री मुकुन्दभाई खारा** का दिनांक 29 दिसम्बर, 2011 को 87 वर्ष की आयु में शांतपरिणामोंपूर्वक देहावसान हो गया।

आप गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के प्रमुख अनुयायीयों में से एक थे, टोडरमल स्मारक ट्रस्ट जयपुर के अनन्य सहयोगी एवं ब्र. शांताबेन के छोटे भाई थे। देवलाली ट्रस्ट एवं सीमंधर जिनालय मुमुक्षु मण्डल मुम्बई की स्थापना व उन्नति आपके ही प्रयासों का फल है। आप मुमुक्षु समाज की अनेकों संस्थाओं से जीवन पर्यंत जुडे रहे। मुमुक्षु समाज की एकता के लिये किये गये आपके प्रयास भी किसी से छिपे नहीं हैं। आपके चिर वियोग से मुमुक्षु समाज को अपूरणीय क्षति हुई है।

अनेक दिनों से शारीरिक अस्वस्थता होने के बावजूद भी आपके हृदय में जयपुर पंचकल्याणक में आने हेतु अत्यंत उत्साह था।

दिवंगत आत्मा चतुर्गति के दु:खों से छूटकर शीघ्र ही अभ्युदय को प्राप्त हो - यही मंगल भावना है।

शोक समाचार

1. सागर (म.प्र.) निवासी श्रीमती कस्तूरीबाई धर्मपत्नी स्व.श्री सेठ सुन्दरलालजी जैन का दिनांक 16 जनवरी को 84 वर्ष की आयु में शांतपरिणामोंपूर्वक देहावसान हो गया। आप अत्यंत तत्त्वरसिक महिला थीं, जयपुर शिविर में भी तत्त्व का लाभ लिया करती थीं। आपकी स्मृति में वीतराग-विज्ञान एवं जैनपथप्रदर्शक हेतु 500-500/- रुपये प्राप्त हुये।

2. करहल-मैनपुरी (उ.प्र.) निवासी श्री वीरेन्द्रकुमारजी जैन 'कुमुद' का दि. 24 दिसम्बर 2011 को शांतपरिणामोंपूर्वक देहावसान हो गया। आप गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के अनन्य भक्त थे। आपकी स्मृति में वीतराग-विज्ञान हेतु 251 रुपये प्राप्त हुये।

3. बण्डाबेलई- सागर(म.प्र.) निवासी श्रीमती सुशीला पटारी धर्मपत्नी श्री मुलायमचंदजी पटारी का दिनांक 26 दिसम्बर को शांत परिणामोंपूर्वक देहावसान हो गया। आप अत्यंत स्वाध्यायी महिला थीं। आपकी स्मृति में वीतराग-विज्ञान हेतु 100/- रुपये प्राप्त हुये।

4. विदिशा (म.प्र.) निवासी डॉ. विद्यानन्दजी का 65 वर्ष की आयु में शांतपरिणामोंपूर्वक देहावसान हो गया। तारण समाज के होते हुए भी गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के प्रति आपकी अच्छी आस्था थी।

प्रारंभ में जब जैनपथप्रदर्शक विदिशा से प्रकाशित होता था, तब आप उसके प्रबंध सम्पादक रहे। आप पण्डित रतनचंदजी के सम्मान में प्रकाशित अभिनन्दन ग्रन्थ के सम्पादक मण्डल में भी थे।

दिवंगत आत्मायें शीघ्र ही अभ्युदय को प्राप्त हों - यही मंगल भावना है।